

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180209

UNIVERSAL
LIBRARY

हमारी विभिन्न प्रवृत्तियाँ

H 83.1/856 G G.H. 2115-

श्रीपतराय ।

Ph. I

गल्पसंसार-माला: हिन्दी । 1941

अभिनव योजनाओं का परिचय कराया जायगा ।

स र स्व ती प्रे स

बनारस : इलाहाबाद: लखनऊ : दिल्ली ।

गल्प-संसार-माला

भाग : १—हिंदी

: संपादक :

श्रीपतराय

: लेखक-गण :

विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

पदुमनाथ पुष्पाकाश बहर्षा

सियारामशरण गुप्त

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

भगवतीचरण वर्मा

कमलाकान्त वर्मा

जयशंकर 'प्रसाद'

कमलादेवी चौधरी

जैनेन्द्रकुमार

उषादेवी मिश्रा

प्रेमचन्द

'अज्ञेय'

'सुदर्शन'

राधाकृष्ण

भगवतीप्रसाद वाजपेयी



बनारस,
सरस्वती प्रेस ।

प्रथम संस्करण, मार्च, १९३८

३०००

द्वितीय संस्करण, जून, १९४१

२०००

तृतीय संस्करण, अगस्त, १९४१

२०००

मूल्य ॥)

॥

॥

: मुद्रक :

श्रीपतराय,
सरस्वती-प्रेस,
बनारस ।

॥

सूची

प्रेमचन्द	:	ईदगाह	...	५
जयशंकर 'प्रसाद'	:	मधुआ	...	२४
विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	:	इक्केवाला	...	३३
'सुदर्शन'	:	एथेंस का सत्यार्थी,	...	४५
पदुमलाल पुन्नालाल बड़शी	:	भुजमलाल	...	५६
जैनेन्द्रकुमार	:	खेज	...	६०
भगवतीचरण वर्मा	:	प्रायश्चित्त	...	६८
भगवतीप्रसाद वाजपेयी	:	ठपटार	...	७६
सियारामशरण गुप्त	:	पथ में से	...	८८
कमलादेवी चौधरी	:	स्वप्न	...	९३
'अज्ञेय'	:	शत्रु	...	१०७
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	:	एक सप्ताह	...	११२
राधाकृष्ण	:	मैना	...	१२८
उषादेवी मित्रा	:	प्यासी हूँ	...	१३६
कमलाकान्त वर्मा	:	पगडण्डी	...	१५६

ईदगाह

रूमजान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब जालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है। पड़ोस के घर में सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो

गये हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेजी के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ा ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बत्ता से, ये तो सेवैयों खायेंगे। वह क्या जानें अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी क़ायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या ख़बर कि चौधरी आज आँखें बंद लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खज़ाना निकालकर गिनते हैं, और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक, दो, दस, बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ, नौ पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लायेंगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या। और सब से ज्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैज़े की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीछी होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुननेवाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से बिदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपए कमाने गये

हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई हैं; इसलिए हमिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हमिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अम्माजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आयेंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती ? इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है; लेकिन हमिद ! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब ? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आये, हमिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हमिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सब से पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हमिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है। उसे कैसे अकेले भेजे जाने दें। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो। नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं सी जान ! तीन कोस चलेगा कैसे ! पैर में छाले पड़ जायेंगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकायेगा ? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीज़ें जमा करते लगेँगे। माँगे ही का

तो भरोसा ठहरा । उस दिन फ़हीमन के कपड़े सिये थे । आठ आने पैसे मिले थे । उस अठन्ना को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए ; लेकिन कल ग्वाल्शन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती । हामिद के लिए कुछ नहीं है तो दो पैसे का रोज़ा दूध तो चाहिये ही । अब कुल दो आने पैसे बच रहे हैं । तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में । यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगावे । धोवन और नाहन और मेंह-तरानी और चूड़ीहारिन सभी आयेंगी । सभी को सेवैयाँ चाहिये और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता । किस-किस के मुँह चुरायेगी । और मुँह क्यों चुराये ? साल-भर का त्योहार है । ज़िन्दगी खैरियत से रहे, उनकी तक्रदीर भी तो उसी के साथ है । बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायेंगे ।

गाँव से मेला चला । और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था । कभी सब-के-सब दौड़कर आगे निकल जाते । फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इन्तज़ार करते । यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं ? हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं । वह कभी थक सकता है ! शहर का दामन आ गया । सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं । पक्की चार दीवारी बनी हुई है । पेड़ों में आम और लीचियाँ फली हुई हैं । कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी ठठाकर आम पर निशाना लगाता है । माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है । लड़के वहाँ से एक फलांग पर हैं । खूब हँस रहे हैं । माली को कैसा डरलू बनाया है ।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं । यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लबघर है । इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे ! सब लड़के नहीं हैं जी ! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच । उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं । इतने बड़े हो गये, अभी तक पढ़ते जाते हैं । न-जाने कब तक

पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर । हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिल्कुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले । इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या । कलवधर में जादू होता है । सुना है, यहाँ मुर्दों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं । और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं; पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते । और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं । बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों-डाढ़ीवाले । और मेमें भी खेलती हैं, सच । हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें घुमाते ही लुढ़क जायँ ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला क्रसम ।

मोहसिन बोला—चलो, मनोँ आटा पीस डालती हैं । ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगेंगे । सैकड़ों घड़े पानी रोज़ निकालती हैं । पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है । किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अधेरा आ जाय ।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकती ।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नहीं सकती ; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतना तेज़ दौड़ी कि मैं उन्हें न पा सका, सच ।

आगे चले । हलवाइयों की दूकानें शुरू हुईं । आज खूब सजी हुई थीं । इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है । देखो न, एक-एक दूकान पर मनोँ होंगी । सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं । अम्मा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है और सचमुच के रूप देता है, बिल्कुल ऐसे ही रूप ।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रूप जिन्नात को कहाँ से मिल जायँगे ?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपयों की कमी ? जिस खज़ाने में चाहें चले जायँ । लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में । हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं । जिससे खुश हो गये, उसे टोकरों जवाहरात दे दिये । अभी यहाँ बैठे हैं, पाँच मिनट में कहो कलकत्ता पहुँच जायँ ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बढ़े-बढ़े होते होंगे ?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी ! ज़मीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे ; मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायँ ।

हामिद—खोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे । कोई मुझे वह मन्तर बता दे, तो एक जिन्न को खुश कर लूँ ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता ; लेकिन चौधरी साहब के क़ाबू में बहुत से जिन्नात हैं । कोई चीज़ चोरी जाय, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे । जुमेराती का बड़वा उस दिन खो गया था । तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला । तब झुक मारकर चौधरी के पास गये । चौधरी ने तुरन्त बता दिया मवेशीखाने में है, और वहाँ मिला । जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं ।

अब सबकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है ।

आगे चले । यह पुलिस लाइन है । यहीं सब कानिसटिबल कवायद करते हैं । रैटन ! फाय फो ! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जायँ ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं । तभी तुम बहुत जानते हो । अजी हज़रत, यही चोरी कराते हैं । शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं । रात को ये लोग चोरों

से तो कहते हैं चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर जागते रहो ! जागते रहो ! पुकारते हैं । जमी इन लोगों के पास इतने रुपए आते हैं । मेरे मामूँ एक थाने में कानिसटिबल हैं । बीस रुपए महीना पाते हैं ; लेकिन पचास रुपए घर भेजते हैं । अल्ला क्रसम । मैंने एक बार पूछा था कि मामूँ, आप इतने रुपए कहाँ से लाते हैं । हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है । फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लायें । हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय ।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं ?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा ? पकड़नेवाले तो यह लोग खुद हैं ; लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है । हराम का माल हराम में जाता है । थोड़े दिन हुए मामूँ के घर में आग लग गई । सारी लेई-पूँजी जल गई । एक बरतन तक न बचा । कई दिनों पेड़ के नीचे सोये, अल्ला क्रसम, पेड़ के नीचे । फिर न-जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाये तो बरतन-भाँड़े आये ।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज़्यादा होते हैं !

‘कहाँ पचास, कहाँ एक सौ ? पचास एक थैली भर होता है । सौ तो दो थैलियों में भी न आवें ।’

अब बस्ती घनी होने लगी थी । ईदगाह जानेवालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं । एक-से-एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए । कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इश्र में बसे, सभी के दिनों में डमङ्ग । ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था । बच्चों के लिए नगर की सभी चीज़ें अनोखी थीं । जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह

जाते । और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते । हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा ।

सहसा ईदगाह नज़र आया । ऊपर इमली के घने वृक्षों का साया है । नीचे पक्का फ़र्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है । और रोजे-दारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न-जाने कहाँ तक चली गई हैं, पङ्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है । नये आनेवाले आकर पीछे की क़तार में खड़े हो जाते हैं । आगे जगह नहीं है । यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता । इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं । इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गये । कितना सुन्दर सञ्चालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था ! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं । कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे । कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थी, मानो आनृत्य का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है ।

(२)

नमाज़ ख़त्म हो गई है । लोग आपस में गले मिला रहे हैं । तब मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर धावा होता है । ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है । यह देखो हिंडोळा है । एक पैसा देकर चढ़ जाओ । कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए । यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छद्मों से लटके हुए हैं । एक पैसा देकर बैठ जाओ और पञ्चीस चक्कों का मज़ा लो । महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं । हामिद दूर खड़ा है । तीन ही पैसे तो

उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई ज़रा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दूकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, और राजा और वकील, भिश्ती और भोबिन और साधू। वाह ! कितने सुन्दर खिलौने हैं ! अब बोला ही चाहते हैं ! महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कंधे पर बन्दूक रखे हुए मालूम होता है अभी कवायद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है, मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी डढ़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उनके मुख पर, काला चुगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में वड़ी की सुनहरी जखीर, एक हाथ में क़ानून का पोथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किये चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। डामिद के पास कुल तीन पैसे हैं। इतने महंगे खिलौने वह कैसे ले ? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाय। ज़रा पानी पड़े तो सारा रज़ धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के !

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जायगा, साँझ सवेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आयेगा तो फौरन बन्दूक फ़ैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुक़दमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी भोबिन रोज़ कपड़े धोयेगी।

डामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो

चकनाचूर हो जायँ ; लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता । उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं ; लेकिन लबके इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक़ है । हामिद ललचता रह जाता है ।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं । किसी ने रेउड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन, किसी ने सोहन इलुवा । मजे से खा रहे हैं । हामिद उनकी बिरादरी से पृथक् है : अभागों के पास तीन पैसे हैं । क्यों नहीं कुछ लेकर खाता ? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है ।

मोहसिन कहता है—हामिद यह रेउड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार हैं ।

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है ; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है । मोहसिन दोने से एक रेउड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है । हामिद हाथ फैलाता है । मोहसिन रेउड़ी अपने मुँह में रख लेता है । महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा बजाकर हँसते हैं । हामिद खिसिया जाता है ।

मोहसिन—अच्छा अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला क़सम ले जाव ?

हामिद—रखे रहो । क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं ?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं । तीन पैसे में क्या लोगे ?

महमूद—इमसे गुलाबजामुन ले जाव हामिद । मोहसिन बद-माश है ।

हामिद—मिठाई कौन बढ़ी नेमत है । किताब में इसकी कितनी उराइयाँ लिखी हैं ।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें । अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद—हम समझते हैं इसकी चालाकी । जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जायँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर स्थायगा ।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीज़ों की हैं । कुछ गिलट और नकली गहनों की । लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था । वह सब आगे बढ़ जाते हैं । हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है । कई चिमटे रखे हुए थे । उसे ख़याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है । तब से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है ; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी । फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी । घर में एक काम की चीज़ हो जायगी । खिलौनों से क्या फ़ायदा । व्यर्थ में पैसे ख़राब होते हैं । ज़रा देर ही तो खुशी होती है । फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठाकर नहीं देखता । या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायँगे, या छोटे बच्चे जो मेल नहीं आये हैं । ज़िद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे । चिमटा कितने काम की चीज़ है । रोटियाँ तब से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो । कोई आग मँगने आवे तो चटपट जूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो । अम्माँ बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाज़ार आयें और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं । रोज़ हाथ जला लेती हैं । हामिद के साथी आगे बढ़ गये हैं । सबीख़ पर सब के सब शर्बत पी रहे हैं देखो सब कितने लालची हैं । इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी । उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो । मेरा यह काम करो । अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूँगा । स्थाय मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी । तब घर से पैसे चुरायेंगे और मार स्थायेंगे । किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं । मेरी ज़बान क्यों ख़राब होगी । अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्मा के लिए मिचटा लाया है ! हज़ारों दुआएँ

देगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखायेंगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा खड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खायें मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सहूँ। ग़रीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं आता। आखिर अब्बाजान कभी न कभी आयेंगे। अम्माँ भी आयेंगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा कितने खिलौने लगे। एक-एक को टोक़रियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेड्डियाँ ली तो चिढ़ा चिढ़ाकर खाने लगे। सब के-सब खूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें। मेरी बला से। उसने दूकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है ?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देख-कर कहा—वह तुम्हारे काम का नहीं है जी !

‘बिकाऊ है कि नहीं ?’

‘बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाये हैं ?’

‘तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है !’

‘छे पैसे लगेंगे।’

हामिद का दिल बैठ गया।

‘ठीक-ठीक बताओ ?’

‘ठीक-ठाक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।’

हामिद ने कलेजा मज़बूत करके कहा—तीन पैसे लोगे !

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार की घुड़कियाँ न सुने।

लेकिन दूकानदार ने घुबकियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हमिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रखा, मानो बन्दूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले ! इसे क्या करेगा ?

हमिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटककर कहा—ज़रा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हमिद—खिलौना क्यों नहीं। अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहुँ तो इससे मर्जारे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खँजरी से बदलोगे ! दो आने की है।

हमिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस एक चमड़े की झूलती लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। ज़रा-सा पानी लग जाय तो ख़तम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफ़ान में, बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया ; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आये हैं, नौ कब के बज गये, धूप तेज़ हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से ज़िद

भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता । हामिद है बड़ा चालाक । इसी लिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे ।

अब बालकों के दो दल हो गये हैं । मोहसिन, महमूद, सग्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ । शास्त्रार्थ हो रहा है । सग्मी तो विधर्मी हो गया । दूसरे पक्ष से जा मिला ; लेकिन मोहसिन महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं । उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति । एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है । वह अजेय है, घातक है । अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चुगे में मुँह छिपाकर ज़मीन पर लेट जायँ । मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रस्तमे-हिन्द लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा ।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता ।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट बतायेगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा ।

मोहसिन परास्त हो गया ; पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—अगर बचा पकड़ जायँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे । तब तो वकील साहब ही के पैरों पड़ेंगे ।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका । उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आयेगा ?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बन्दूकवाला ।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रस्तमे-

हिन्द को पकड़ेंगे । अच्छा लाओ अभी ज़रा कुरती हो जाय । इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे । पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज़ आग में जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा ; लेकिन यह बात नहीं हुई । हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियों की तरह घर में घुस जायेंगे । आग में कूदना वह काम है, जो यह रस्तमे-
पट ही कर सकता है ।

महमूद ने एक जोर लगाया—वकील साहब कुरसी मेज़ पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावर्चीख़ाने में ज़मीन पर पड़ा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया । कितने ठिकाने की बात कही है पट्टे ने चिमटा । बावर्चीख़ाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है ।

हामिद को कोई फ़इक़ता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बावर्चीख़ाने में नहीं रहेगा । वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें ज़मीन पर पटक देगा और उनका क़ानून उनके पेट में डाल देगा ।

बात कुछ बनी नहीं । ख़ासी ग़ाली-ग़लौज थी ; लेकिन क़ानून को पेट में डालनेवाली बात छ़ा गई । ऐसी छ़ा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गये, मानो कोई धेलचा कंकौआ किसी गण्डेवाले कंकौए को काट गया हो । क़ानून मुँह से बाहर निकलनेवाली चीज़ है । उसको पेट के अन्दर डाल दिया जावे, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है । हामिद ने मैदान मार लिया । उसका चिमटा रस्तमे-हिन्द है । अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती ।

विजेता को हारनेवालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने वाले पैसे खर्च किये; पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रज़ जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा! टूट-फूट जायेंगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों!

सन्धि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—ज़रा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया। और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आये। कितने खूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारनेवालों के आँसू पोछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह जोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पाटी को इस दिज़ासे से सन्तोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्माँ ज़रूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले ?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिज़कुल ज़रूरत न थी। फिर अब तो चिमटा हस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को

दिये । महमूद ने केवल हामिद को साफ़ बनाया । उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गये । यह उस चिमटे का प्रसाद था ।

(२)

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई । मेलेवाले आ गये । मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरबोको सिधारे । इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई । दोनों खूब रोये । उनकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चोंटे और लगाये ।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनकी प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ । वकील ज़मीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता । उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा । दीवार में दो खूँटियाँ गाड़ी गई । उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया । पटरे पर कागज़ का कालीन बिछाया गया । वकील साहब राजा भोज की भाँति इस सिंहासन पर विराजे । नूरे ने वन्हें पंखा झूलना शुरू किया । अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं । क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो ! कानून की गर्मी दिमाग़ पर चढ़ जायगी कि नहीं बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे । मालूम नहीं पंखे की हवा से, या पंखे की चोट से, वकील साहब स्वर्गलोक से मर्त्यलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े जोर-शोर से मानम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूर पर डाल दी गई ।

अब रहा महमूद का सिपाही । उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया ; लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले । वह पाखकी पर चलेगा । एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाये गये, जिसमें

सिपाही साहब आराम से लेटें । नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे । उनके दोनो छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोनेवाले, जागते लहो !' पुकारते चलते हैं । मगर रात तो अंधेरी होनी ही चाहिये । महमूद को ठोकर लग जाती है । टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक जिये ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है । महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है । उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता है । केवल गूलर का दूध चाहिये । गूलर का दूध आता है । टाँग जोड़ दी जाती है ; लेकिन सिपाही को ज्योंही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है । शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है । अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है ! एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था । अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है । अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है । कभी-कभी देवता भी बन जाता है । उसके सिर का झालरदार साफ़ खुरच दिया गया है । अब उसका जितना रूपान्तर चाहो कर सकते हो । कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है ।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिये । अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी । सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी ।

‘यह चिमटा कहाँ था ?’

‘मैंने मोल लिया है ।’

‘कैसे पैसे में ?’

‘तीन पैसे दिये ।’

अमीना ने छाती पीट ली । यह कैसा बेसमझ खड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया । लाया क्या यह चिमटा ! सारे मेले में

तुम्हें और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ?
हामिद ने अपराधी भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तब से जल जाती थीं ; इसलिए मैंने इसे ले लिया ।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है । यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ । बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है । दूसरों की खिन्नताएँ लेते और मिठाइयाँ खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा । इतना ज़ब्त इससे हुआ कैसे ? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही । अमीना का मन गद्गद् हो गया ।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई । हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र । बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था । बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई । वह रौने लगी । दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी । हामिद इसका रहस्य क्या समझता !

मधुआ

‘आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, लुआ तक नहीं !
आजसा तवाँ दिन है सरकार !’

‘तुम मूठे हो । अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है ।’

‘वह...वह तो कई दिन हुए । सात दिन से ऊपर—कई दिन
हुए—अँधेरे में बोलत उँदेलने लगा था । कपड़े पर गिर जाने से नशा
भी न आया । और आपको कहने का...क्या कहूँ...सच मानिये ।
सात दिन—ठीक सात दिन से एक बुँद भी नहीं ।’

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे । लखनऊ में लड़का पढ़ता था । ठाकुर साहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते । उनको कहानी सुनने का चसका था । खोजने पर यही शराबो मिला । वह रात को, दोपहर में, कभी-कभी सवेरे भी आ जाता । अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता ।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—तो आज पियोगे न ?

'सूठ कैसे कहूँ । आज तो जितना मिलेगा, सबकी पिऊंगा सात दिन चने-चबेने पर बिताये किस लिए ?

'अद्भुत ! सात दिन पेट काटकर, आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने को सूझी है ! यह भी...'

'सरकार ! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःख-पूर्ण जीवन से अच्छी है । उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं ।'

'अच्छा, आज दिन-भर तुमने क्या-क्या किया है ?'

'मैंने ? अच्छा सुनिये—सवेरे कुहरा पड़ता था, मेरे थुँआँसे कम्बल-सा वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था । हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे ।'

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—अच्छा, तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण ?

'सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी । भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था ? और जब बारह बजे धूर निकली, तो फिर लाचारी थी । उठा, हाथ-मुँह धोने में जो दुःख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है ! पास में पैसे बचे थे । चना-चबाने से दाँत भाग रहे थे । कट-कटी लग रही थी । परांटेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सँकता भी रहा । फिर गोमती-किनारे चला गया । घूमते-घूमते अंधेरा हो गया, बूँदें पड़ने लगीं । तब कहीं भागा और आपके पास आ गया ।'

‘अच्छा, जो उस दिन तुमने गड़रियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमें आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल, मुने हुए मुट्टे के दानों के बदले, मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है ?’

‘सच ! अरे वह गरीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू-थू करने लगी !...रोने लगी । ऐसी निर्दयी दिल्लीवाले बड़े लोग कर ही बैठते हैं । सुना है, श्रीरामचन्द्र ने भी हनुमानजी से ऐसी ही...’

ठाकुर साहब ठाकुर हँसने लगे । पेट पकड़कर हँसते-हँसते जोट गये । साँस बटोरते हुए सगहलकर बोले—और बड़प्पन कहते किसे हैं ? कंगाल तो कंगाल ! गधी लड़की ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी । मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाई, सब में बड़ी टीस थी । शाहजादों के दुखड़े, रंग-महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं ; पर ऐसी हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बड़िया शराब पिला सकता हूँ ।

‘सरकार ! वृद्धों से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन ! अमीरों की रंग-रेलियाँ ! दुस्त्रियों की दर्द-भरी आँहें ! रंग-महलों में घुल-घुलकर मरनेवाली बेगमों अपने-आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं । मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ । अमीर कंगाल हो जाते हैं । बड़े बड़े घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं । तब भी दुनिया बड़ी पागल है । मैं उसको, पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ—सरकार ! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता !’

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे । अँगोठी में कीयला दहक रहा था । शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था—वह हाथ सँकने लगा । सहसा नींद से चौंककर ठाकुर साहब ने कहा—

अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है । वह देखो एक रुपया पड़ा है, उठा लो । बरलू को भेजते जाओ ।

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका । जल्लू था ठाकुर साहब का जमादार । उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे पुष्कमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा । वह खड़ा होकर सुनने लगा ।

‘तो सूअर ! रोता क्यों है ?’ कुँअर साहब ने दो ही जात न लगाई है ! कुछ गोखी तो नहीं मार दी ?’—कर्कश स्वर से जल्लू बोल रहा था ; किन्तु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती । अब और भी कठोरता से जल्लू ने कहा—मधुआ ! जा सो रह नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा ! समझा न ?

शराबी चुपचाप सुन रहा था । बालक का सिसकी और बढ़ने लगी । फिर उसे सुनाई पड़ा—‘जे, अब भागता है कि नहीं !’ क्यों मार खाने पर तुला है ?

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था । शराबी ने उसके छोटे से सुन्दर गोरे मुँह को देखा । आँसू की बूँदें टुलक रही थीं । बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया । दस बज रहे थे । कढ़ाके की सर्दी थी । दोनों चुपचाप चलने लगे । शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे-से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया । वह चुप हो गया । अभी वह एक तंग गली पर रुका था कि बालक के फिर से सिसकने को उसे आइट लगी । वह भी झिड़क कर बोल उठा—

‘अब क्या रोता है रे छोकरे ?’

‘मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं ।’

‘कुछ खाया नहीं’ ; इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिनभर तुझे खाने को नहीं मिला ?’

‘यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास ; मार तो रोज़ ही

खाता हूँ । आज तो खाना ही नहीं मिलता । कुँवर साहब का ओवर-कोट लिये खेल में दिन-भर साथ रहा । सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा । आटा रख नहीं सका था । रोटी बनती तो कैसे । जमादार से कहने गया था ।—भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया । वह फिर हिचकियाँ लेने लगा ।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले चला । एक गन्दे कोठरी का दरवाजा ढकेलकर बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा । टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा । एक परांठे का टुकड़ा मिला । शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला—तब तक तू इसे चबा, मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ—सुनता है रे छोकरे ! रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा ! मुझसे रोने से बड़ा बैर है । पाजी कही का, मुझे भी रुलाने का...

शराबी गली के बाहर भागा । उसके हाथ में एक रुपया था । बारह आने का एक देशी अड़्डा और दो आने का चॉप...दो आने की की पकौड़ी, नहीं-नहीं आलू-मटर.....अच्छा, न सही । चारो आने का मॉस ही ले लूँगा ; पर यह छोकरा । इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या खायगा ? ओह ! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं । तो क्या ले चलूँ ? पहले एक अड़्डा ही ले लूँ !—इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी । उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खड़ा पाया । वह शराब का अड़्डा लेना भूलकर मिठाई-पूरी खरीदने लगा नमकीन लेना भी न भूला । पूरे एक रुपए का सामान लेकर वह दूकान से हटा । जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा । अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने

सजा दी। उसकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरह की तरावट पहुँची वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँदेलते हुए कहा—नटखट कहीं का, हँसता है ! सोंधी बास नाक में पहुँची न ! ले, खूब ठूँसकर खा ले, और रोया कि पिटा !

दोनों ने बहुत दिन पर मिलनेवाले दो मित्रों की तरह साथ बैठकर भर-पेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बड़ाने लगा—सोचा था, आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा ; लेकिन यह छोटा-सा रोना पाजी, न जाने कहाँ से आ भमका !



एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर, कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिल-मिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की ? आह री नियति ! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या ? दुर्भाग्य ! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता—जिस पर आज तक केवल बोलत का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यों लेने लगी ? इस छोटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बाँड़ा उठाया है ? तब क्या करूँ ? कोई काम करूँ ? कैसे दोनों का पेट चलेगा ? नहीं, भगा दूँगा इमे—आँख तो खोलें !

बालक अँगड़ाई ले रहा था। उठ बैठा। शराबी ने कहा—ले, उठ कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख ! तेरा नाम क्या है रे ?

बालक ने सहज हँसी-हँसकर कहा—मधुश्रा । भला हाथ-मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ ! और जाऊँगा कहाँ !

‘आह ! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय ! कह दूँ कि भाड़ में जा ; किन्तु वह आज तक दुःख की भट्टी में जलता ही तो रहा है । तो...’ वह चुपचाप घर से झुल्लाकर सोचता हुआ निकला—ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं । तू ही इस कोठरी में रह !

शराबी घर से निकला । गोमती-किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था ; पर कुछ भी सोच न सका । हाथ-मुँह धोने में लगा । उजली हुई धूप निकल आई थी । वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था । धूप की गरमी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था, कि किसी ने पुकारा—

‘भले आदमी रहे कहाँ ? सालों पर दिखाई पड़े । तुमको खोजते-खोजते मैं थक गया ।’

शराबी ने चौंककर देखा । वह कोई जान-पहचान का तो मालूम होता था ; पर कौन है, यह ठीक-ठीक नहीं जान सका ।

उसने फिर कहा—तुम्हीं से कह रहे हैं । सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा । एक ही तो कोठरी, जिसका मैं दो रुपए किराया देता हूँ, उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिए नहीं है ?

‘ओ हो ! रामजी, तुम हो, भाई मैं भूल गया था । तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूँ ।’ कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिन काम चलेगा ।

गोमती नहाकर रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा । शराबी को कल देते हुए उसने कहा—ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे ।

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—‘क्यों रे, तू ने कुछ खा लिया कि नहीं?’

‘भर पेट खा चुका हूँ, और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।’—कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रुखी कोठरी की तरफ कर दिया। शराबी एक क्षण-भर चुप रहा। फिर चुपचाप जल-पान करने लगा। मन-ही-मन सोच रहा था—‘यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है? चलो, फिर लेकर सान देने का काम चलता रहूँ’। दोनों का पेट भरेगा। वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें, किरसा-कहानी हथर-उधर की कहकर, अपना काम चला ही लेता था। पर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का। जल पीकर बोला—‘क्यों रे मधुष्मा, अब तू कहाँ जायगा?’

‘कहीं नहीं।’

‘यह जो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है, कि मैं खोद-खोदकर तुम्हें मिठाई खिलाता रहूँगा?’

‘तब कोई काम करना चाहिये।’

‘करेगा!’

‘जो कहो!’

‘अच्छा, तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए लाया हूँ। चल, आज से तुम्हें सान सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नहीं। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न?’

‘कहीं भी रह सकूँगा; पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा।’

शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें हठ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं।

शराबी ने मन ही मन कहा—‘बैठे बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगन्ध लेनी पड़ी।’

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा । एक गद्दर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए ।

शराबी ने पूछा—तू किसे उठायेगा ?

‘जिसे कहो ।’

‘अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?’

‘कोई नहीं’ पकड़ेगा, चलो भी । मेरे बाप मर गये !’

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया । बालक ने गठरी लादी । दोनों कोठरी छोड़कर चल पड़े ।



इक्केवाला

स्टेशन के बाहर आकर मैंने अपने साथी मनोहरलाल से कहा—
कोई इक्का मिल जाय, तो अच्छा है—दस मील का रास्ता है ।

मनोहरलाल बोले—आइये, इक्के बहुत हैं । उस तरफ खड़े
होते हैं ।

हम दोनों चले । लगभग दो सौ गज़ चलने के पश्चात् देखा, तो
सामने एक बड़े वृक्ष के नीचे तीन-चार इक्के खड़े दिखाई दिये । एक
इक्का अभी आया था और उस पर से दो आदमी अपना असबाब उतार

रहे थे । मनोहरलाल ने पुकारा—कोई इक्का गंगापुर चलेगा ?

एक इक्केवाला बोला—आइये सरकार, मैं ले चलूँ । कै सवारी हैं ?

‘दो सवारी—गंगापुर का क्या लोगे ?

‘जो सब देते हैं, वही आप भी दे दीजियेगा !’

‘आखिर कुछ मालूम तो हो ?’

‘दो रुपए का निरख (निख) है ।’

‘दो रुपए ?—इतना अच्छे !’

इसी समय जो लोग अभी आये थे, उनमें और उनके इक्केवाले में झगड़ा होने लगा । इक्केवाला बोला—यह अच्छी रही, वहाँ से डेढ़ रुपया तय हुआ, यहाँ बीस ही आने दिखाते हैं !

यात्रियों में से एक बोला—हमने पहले ही कह दिया था कि हम बीस आने से एक पैसा अधिक न देंगे ।

‘मैंने भी तो कहा था, कि डेढ़ रुपए से एक पैसा कम न लूँगा ।’

‘कहा होगा, हमने तो सुना नहीं !’

‘हाँ, सुना नहीं—ऐसी बात आप काहे को सुनेंगे !’

‘अच्छा तुम्हें बीस आने मिलेंगे—लेना हो तो लो, नहीं अपना रास्ता देखो ।’

इक्केवाला, जो हष्ट-पुष्ट तथा गौरवर्ण था, अकड़ गया । बोला—रास्ता देखें, कोई अच्छे है ! ऐसे रास्ता देखने लगें, तो बस कमाई कर चुके । बायें हाथ से इधर डेढ़ रुपया रख दीजिये, तब आगे बढ़ियेगा ! वहाँ तो बोले, अच्छा जो तुम्हारा रेट होगा, वह देंगे, अब यहाँ कहते हैं, रास्ता देखो—अच्छे मिले !

हम लोग यह कथोपकथन सुनकर इक्का करना भूल गये और उनकी बातें सुनने लगे । एक यात्री बड़ी गम्भीरतापूर्वक बोला—देखो जी, यदि तुम भलमनसी से बातें करो, तो दो-चार पैसे हम अधिक दे

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'] : ३५ : [गल्प-संसार-माला

सकते हैं तुम गरीब आदमी हो ; लेकिन जो झगड़ा करोगे तो एक पैसा न मिलेगा ।

इक्केवाला किंचित् मुस्कराकर बोला— दो-चार पैसे ! ओफ़् ओह ! आप तो बड़े दाता मालूम होते हैं ! जब चार पैसे देते हो, तो चार आने ही क्यों नहीं दे देते !

‘चार आने हमारे पास नहीं हैं ।’

‘नहीं हैं—अच्छी बात है, तो जो आपके पास हो वही दे दीजिये— न हो न दीजिये और जरूरत हो तो एकाध रुपया मैं आपको दे सकता हूँ ।’

‘तुम बेचारे क्या दोगे, चार-चार पैसे के लिए तो तुम झूठ बोलते हो और बेईमानी करते हो ।’

‘अरे बाबूजी, लाखों रुपए के लिए तो मैंने बेईमानी की नहीं— चार पैसे के लिए बेईमानी करूँगा ? बेईमानी करता तो इस समय इक्का न हॉकता होता । खैर आपको जो देना हो दे दीजिये—नहीं जाइये—मैंने किशया भर पाया ।’

उन्होंने बीस आने निकालकर दिये । इक्केवाले ने चुपचाप ले लिये ।

उस इक्केवाले का आकार-प्रकार उसकी बातचीत से मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्य इक्केवालों की तरह यह साधारण आदमी नहीं है । इसमें कुछ विशेषता अवश्य है ; अतएव मैंने सोचा कि यदि हो सके, तो गंगापुर इसी इक्के पर चलना चाहिये । यह सोचकर मैंने उससे पूछा—क्यों भाई, गंगापुर चलोगे ?

वह बोला—हाँ ! हाँ आइये !

‘क्या लोगे ?’

‘वही डेढ़ रुपया !’

मैंने सोचा, अन्य इक्केवाले तो दो रुपए माँगते थे, यह डेढ़ रुपया

कहता है, आदमी सच्चा मालूम होता है। यह सोचकर मैंने कहा—
अच्छी बात है, चलो डेढ़ रुपया देंगे।

हम दोनो सवार होकर चले। थोड़ी दूर चलने पर मैंने पूछा—वे
दोनो कौन थे ? इक्केवाले ने कहा—नारायण जाने कौन थे, परदेसी
मालूम होते हैं ; लेकिन परले-सिरे के मूठे और बेईमान ! चार आने के
लिए प्राण तजे दे रहे थे।

मैंने पूछा—तो सचमुच तुमसे डेढ़ रुपया ही तय हुआ था ?

‘और नहीं क्या आप मूठ समझते हैं ? बाबूजी, यह पेशा ही बद-
नाम है, आपका कोई कसूर नहीं। इक्के, टाँगेवाले सदा मूठे और
बेईमान समझे जाते हैं। और होते भी हैं—अधिकतर तो ऐसे ही होते
हैं। इन्हें चाहे आप रुपए की जगह सवा रुपया दीजिये, तब भी
सन्तुष्ट नहीं होते।’

मैंने पूछा—तुम कौन जाति हो ?

‘मैं ? मैं तो सरकार, वैश्य हूँ।’

‘अच्छा ! वैश्य होकर इक्का हाँकते हो ?’

‘क्यों सरकार, इक्का हाँकना कोई बुरा काम तो है नहीं ?’

‘नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि इक्का हाँकना कोई बुरा काम
है। मैंने इसलिए कहा कि वैश्य तो बहुधा व्यापार करते हैं।’

‘यह भी तो व्यापार ही है।’

‘हाँ, है तो व्यापार ही।’

मैं मन-ही-मन अपनी इस बेतुकी बात पर लज्जित हुआ ; अतएव
मैंने प्रसंग बदलने के लिए पूछा—कितने दिनों से यह काम करते हो ?

‘दो बरस हो गये।’

‘इसके पहले क्या करते थे ?’

यह सुनकर इक्केवाला गरभीर होकर बोला—क्या बताऊँ, क्या
करता था।

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'] : ३७ : [गल्प-संसार-मान्ना

उसकी इस बात से तथा यात्रियों से उसने जो बातें कही थीं । उनका तारतम्य मिलाकर मैंने सोचा—इस व्यक्ति का जीवन रहस्यमय मालूम होता है । यह सोचकर मैंने उससे पूछा—कोई दर्ज न समझो, तो बताओ ।

‘दर्ज तो कोई नहीं’ है बाबूजी ! पर मेरी बात पर लोगों को विश्वास नहीं होता । इक्केवाले बहुधा परले सिरे के गप्पी समझे जाते हैं ; इसलिए मैं किसी को अपना हाल सुनाता नहीं ।’

‘खैर, मैं उन आदमियों में नहीं हूँ, यह तुम विश्वास रखो ।’

‘अच्छी बात है, सुनिये—

(२)

मैं अगरवाला बनिया हूँ । मेरा नाम श्यामलाल है । मेरा जन्म-स्थान मैनपुरी है । मेरे पिता व्यापार करते थे । जिस समय मेरे पिता की मृत्यु हुई, उस समय मेरी उम्र पन्द्रह साल की थी । पिता के मरने पर घर-गृहस्थी का सारा भार मेरे ऊपर पड़ा । मैंने एक वर्ष तक काम-काज चलाया ; पर मुझे व्यापार का अनुभव न था, इस कारण घाटा हुआ और मेरा सब काम बिगड़ गया । अन्त को और कोई उपाय न देख मैंने वहीं एक भनी आदमी के यहाँ नौकरी कर ली । उस समय मेरे परिवार में मेरी माता और एक छोटी बहन थी । जिसके यहाँ मैंने नौकरी की थी, वह थे तो मालदार ; परन्तु बड़े कंजूस थे । ऊपर से देखने में वह एक मामूली हैसियत के आदमी दिखाई पड़ते थे ; परन्तु लोग कहते थे कि उनके पास एक लाख के लगभग नक़्कद रुपया है । उस समय मैंने लोगों की बात पर विश्वास नहीं किया था ; क्योंकि घर की हालत देखने से किसी को यह विश्वास नहीं हो सकता था कि उनके पास इतना रुपया होगा । उनकी उम्र उस समय चालीस से ऊपर थी । उन्होंने दूसरी शादी की थी और उनकी पत्नी की उम्र बीस वर्ष के लगभग थी । पहली स्त्री से उनके एक लड़का था । वह जवान था

और उसका विवाह इत्यादि सब हो चुका था । उसका नाम शिवचरण-लाल था । पहले तो वह अपने पिता के पास ही रहता था ; परन्तु जब पिता ने दूसरा विवाह किया, तो वह नाराज़ होकर अपनी स्त्री सहित परुषोत्तावाद चला गया । वहाँ उसने एक दूकान कर ली और वहीं रहने लगा ।

‘उन दिनों मुझे कसरत करने का बड़ा शौक था ; इसलिए मेरा बदन बहुत अच्छा बना हुआ था । कुछ दिनों पश्चात् मेरी मालकिन मेरी बहुत ख़ातिर करने लगीं । खूब मेवा-मिठाई खिलाती थीं और महीने में दस-बीस रुपए नक़द दे देती थीं । इस कारण दिन बड़ी अच्छी तरह कटने लगे । मैं मालकिन के ख़ातिर करने का असली मतलब उस समय नहीं समझा । मैंने जो समझा, वह यह था, कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर तथा मुझे ग़रीब समझकर वह ऐसा करती हैं । आख़िर जब एक दिन उन्होंने मुझे एकान्त में बुलाकर छेड़-छाड़ की, तब मेरी आँखें खुलीं । मुझे आरम्भ से ही इन कामों से नफ़रत थी । मैं इन बातों को जानता भी नहीं था । न कभी ऐसी सगति ही मैं रहा था, जिसमें इन बातों का ज्ञान प्राप्त होता । मैं उस समय जो जानता था, वह यह था, कि आदमी को खूब कसरत करना चाहिये और स्त्रियों से बचना चाहिये । जब मालकिन ने छेड़-छाड़ की, तो मुझे उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होने के बदले भय मालूम हुआ । मेरा कलेजा बड़कने लगा । मुझे ऐसा मालूम हुआ, कि वह एक चुड़ै ।

और मुझे भक्षण करना चाहती है ।’

इक्केवाले की इस बात पर मेरे साथी मनोहरलाल बहुत हँसे । बोले—तुम तो बिल्कुल बद्धू थे जी !

श्यामलाल बोला—अब जो समझिये ; परन्तु बात ऐसी ही थी । ख़ैर, मैं अपना हाथ छुड़ाकर उनके सामने से भाग आया । अब मुझे उनके सामने जाते डर मालूम होने लगा । यही ख़ाटका लगा रहता

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'] : ३९ : [गल्प-संसार-माला

था, कि कहीं किसी दिन फिर न पकड़ लें। तीन-चार दिन बाद वही हुआ। उन्होंने अवसर पाकर फिर मुझे घेरा। उस दिन मैंने उनसे साफ़-साफ़ कह दिया, कि यदि वह ऐसी हरकत करेगी, तो मैं मालिक से कह दूँगा। बस, उसी दिन से मेरी खातिर बन्द हो गई। केवल खातिर बन्द होकर रह जाती, वहाँ तक ग़नीमत थी; परन्तु अब उन्होंने मुझे तंग करना आरम्भ किया। बात-बात पर डाँटती थीं। कभी मालिक से शिकायत कर देती थीं। आखिर जब एक दिन मालिक ने मुझे मालकिन के कहने से बहुत डाँटा, तो मैंने उन्हें अलग ज़े जाकर कहा—लालाजी, मेरा हिसाब कर दीजिये, मैं अब आपके यहाँ नौकरी नहीं करूँगा। लालाजी लाल-पीली आँखें करके बोले—एक तो क्रसूर करता है और इस पर हिसाब माँगता है? मुझे भी तेहा आ गया। मैंने कहा—क्रसूर किस ससुरे ने किया है? लालाजी बोले—तो क्या मालकिन झूठ कहती हैं? मैंने कहा—बिलकुल झूठ! लालाजी ने कहा—तेरे से उनकी शत्रुता है क्या? मैंने कहा—हाँ शत्रुता है। उन्होंने पूछा—क्यों? मैंने कहा—अब आपसे क्या बताऊँ। आप उसे भी झूठ मानेंगे। इसलिए सबसे अच्छी बात यही है, कि मेरा हिसाब कर दीजिये। मेरी बात सुनकर लाला के पेट में खलबली मची। उन्होंने कहा—पहले यह बता, कि बात क्या है? मैंने कहा—उसके कहने से कोई फ़ायदा नहीं, आप मेरा हिसाब दे दीजिये। परन्तु लाला मेरे पीछे पड़ गये। मैंने विवश होकर सब हाल बता दिया। मुझे भय था, कि लाला को मेरी बात पर विश्वास न होगा; पर ऐसा नहीं हुआ। लाला ने मेरी पीठ पर हाथ फेरकर कहा—शाबाश श्यामलाल, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम आनन्द से रहो, तुम्हारी तरफ़ कोई आँख उठाकर नहीं देख सकेगा। बस उस दिन से मैं निर्द्वन्द्व हो गया। अब अधिकतर मैं मालिक के पास बाहर ही रहने लगा, भीतर कम जाता था। उसके पश्चात् भी मालकिन ने मेरे निकलवाने के लिए चेष्टा की;

पर लाला ने उनकी एक न सुनी । आखिर वह भी हारकर बैठ रही ।

‘इस प्रकार एक वर्ष और बीता । इस बीच में लाला के एक रिश्ते-दार—जो उनके चचेरे भाई होते थे—बहुत आने-जाने लगे । उनकी उम्र पच्चीस-छत्तीस वर्ष के लगभग होगी । शरीर के मोटे-ताजे और तन्दुरुस्त आदमी थे । पहले तो मुझे उनका आना-जाना कुछ नहीं खटका ; पर जब उनका आना-जाना हृद से अधिक बढ़ गया और मैंने देखा, कि वह मालकिन के पास घण्टों बैठे रहते हैं, तो मुझे सन्देह हुआ, कि हो न-हो दाल में कुछ काला अवश्य है । लालाजी अधिकतर दूकान में रहने के कारण यह बात न जानते थे । घर का कहार भी मालकिन से मिला हुआ मालूम होता था ; इसलिए वह भी चुपचाप साथे था । एक मैं ही ऐसा था, जिसके द्वारा लाला को यह खबर मिल सकती थी । अन्त में मैंने इस रहस्य का पता लगाने पर कमर बाँधी और एक दिन अपनी अँखों उनकी पापमयी लीला देखी । बस उसी दिन मैंने लाला को खबर दी । लाला उस बात को चुपचाप पी गये । आठ-दस रोज़ बाद लाला ने मुझे बुलाकर कहा—‘श्यामलाल, तेरी बात ठीक निकली, आज मैंने भी देखा । जिस दिन तूने कहा था, उसी दिन से मैं इसकी टोह में था—आज तेरी बात की सत्यता प्रमाणित हो गई ; अब बता, क्या करना चाहिये ! मैंने कहा—मैं क्या बताऊँ, आप जो उचित समझें, करें । लाला ने पूछा—तेरी क्या राय है ? मैंने इस उम्र में विवाह करके बड़ी भूल की ; पर अब इसका उपाय क्या है ? मैंने कहा—अपने भाई साहब का आना-जाना बन्द कर दीजिये, यही उपाय है और हो ही क्या सकता है ? लाला ने सोचकर कहा—हाँ, यही ठीक है । जी में तो आता है कि इस औरत को निकाल बाहर करूँ ; पर इसमें बड़ी बदनामी होगी । लोग हँसेंगे कि पहले तो विवाह किया, फिर निकाल दिया ।

‘मैंने कहा—हाँ, यह तो आपका कहना ठीक है । बस, उनका

आना-जाना बन्द कर दीजिये ; अतएव उसी दिन से यह हुकुम लग गया, कि लाला की अनुपस्थिति में बाहर का कोई आदमी—चाहे रिश्तेदार हो, चाहे कोई हो—अन्दर न जाने पावे । और यह काम मेरे सुपुर्द किया गया । उस दिन से मैंने उन्हें नहीं घँसने दिया । इस पर उन्होंने मुझे प्रलोभन भी दिये, धमकी भी दी ; पर मैंने एक न सुनी । मालकिन ने भी बहुत कुछ कहा-सुना खुशामद की ; पर मैं ज़रा भी न पसीजा । कहरवा भी बोला—तुमसे क्या मतलब है, जो होता है, होने दो । मैंने उससे कहा—सुनता है बे, तू तो पक्का नमकहराम है, जिसका नमक खाता है, वसी के साथ दगा करता है । खैरियत इसी में है कि चुप रह, नहीं तुझे भी निकाल बाहर करूँगा ।

‘यह सुनकर कहारराम चुप हो गये ।

‘थोड़े दिन बाद लाला के उन रिश्तेदार ने आना-जाना बिलकुल बन्द कर दिया । अब बह लाला के पास भी नहीं आते थे । मैंने भी सोचा, चलो अच्छा हुआ, आँख फूटी पीर गई ।

‘इसके छः महीने बाद एक दिन लाला को हैजा हो गया । मैंने बहुत दौड़-धूप की, हलाज हत्यादि कराया ; पर कोई फायदा न हुआ । लालाजी समझ गये कि अन्त समय निकट है ; अतएव उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—श्यामलाल, मैं तुझे अपना नौकर नहीं, पुत्र समझता हूँ ; इसलिए मैं अपनी कोठरी की ताली तुझे देता हूँ । मेरे मरने पर ताली मेरे लड़के को दे देना और जब तक वह आ न जाय, तब तक किसी को कोठरी न खोलने देना । बस, तुझसे मैं इतनी अन्तिम सेवा चाहता हूँ ।

‘मैंने कहा—ऐसा ही होगा, चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जायँ ; पर मैं इसमें अन्तर न पड़ने दूँगा । इसके पश्चात् उन्होंने मुझे पाँच हजार रुपए नक़्द दिये और बोले—यह लो, मैं तुम्हें देता हूँ । मैं लेता न था ; पर उन्होंने कहा—तू यदि न लेगा, यो मुझे दुःख होगा ;

अतएव मैंने ले लिये । इसके चार घंटे बाद उनका देहान्त हो गया । उनके लड़के को उनके मरने के तीन घंटे पहले तार दे दिया गया था । उनके मरने के पाँच घण्टे बाद वह मैनपुरी पहुँचा था । उनका देहान्त रात को आठ बजे हुआ और वह रात के दो बजे के निकट पहुँचा था । लाला के मरने के बाद उनकी स्त्री ने मुझसे कहा—कोठरी की ताली लाओ । मैंने कहा—ताली तो लाला शिवचरणलाल के हाथ में देने कह गये हैं, मैं उन्हीं को दूँगा । उन्होंने कहा—अरे सूर्य, इससे तुझे क्या मिलेगा । कोठरी खोलकर रुपया निकाल ले—मुझे मत दे, तू ले ले, मैं भी तेरे साथ रहूँगी, जहाँ तू ले चलेगा, तेरे साथ चलूँगी । मैंने कहा—मुझसे यह नहीं होगा । मैं तुम्हें ले जाकर रखूँगा कहाँ ! दूसरे तुम मेरे उस मालिक की स्त्री हो, जो मुझे अपने पुत्र के समान मानता था । मुझसे यह न होगा, कि तुम्हें अपनी स्त्री बनाकर रखूँ ।

‘बाबूजी, एक घंटे तक उसने मुझे समझाया, रोई भी, हाथ भी जोड़े ; परन्तु मैंने एक न मानी । आखिर उसने अन्य उपाय न देख अपने देवर अर्थात् उन्हीं को बुलवाया, जिनका आना-जाना मैंने बन्द कराया था । उन्होंने आते ही बड़ा रुआब झाड़ा । मुझे पुत्नीस में देने की धमकी दी ; पर मैं इससे भयभीत न हुआ । तब वह ताला तोड़ने पर अमादा हुए । मैं कोठरी के द्वार पर एक मोटा डंडा लेकर बैठ गया और मैंने उनसे कह दिया कि जो कोई ताला तोड़ने आवेगा, पहले मैं उसका सिर तोड़ूँगा, इसके बाद जो होगा देखा जायगा । बस फिर उनका साहस न हुआ । इस रगड़े-भगड़े में रात के दो बज गये और शिवचरणलाल आ गये । मैंने इनको ताली दे दी और सब हाल बता दिया ।

‘बाबूजी, जब कोठरी खोली गई, तो उसमें से साठ हजार रुपए नक़द निकले । इन रुपयों का हाल लाला के अतिरिक्त और किसी को भी मालूम न था । यदि मैं मालकिन की बात मान कर बीस-

पच्चीस हज़ार रुपए भी निकाल लेता, तो किसी को भी सन्देह न होता ; पर मेरे मन में इस बात का विचार एक क्षण के लिए भी पैदा न हुआ । मेरी माँ रोज़ रामायण पढ़कर मुझे सुनाया करती थीं, और मुझे यही समझाया करती थीं कि—बेटा, पाप और बेईमानी से सदा बचना, इससे तुझे कभी दुःख न होगा । उनकी यह बात मेरे जी में बसी हुई थी और इसीलिए मैं बच गया । उसके बाद शिवचरणलाल ने भी मुझे एक हज़ार रुपया दिया । साथ ही उन्होंने यह कहा कि तुम मेरे पास रहो ; पर लाला के मरने से और जो अनुभव मुझे हुए थे, उनके कारण मैंने उनके यहाँ रहना उचित न समझा । लाला की तेरही होने के बाद मैंने उनकी नौकरी छोड़ दी । छः हज़ार रुपए में से दो हज़ार मैंने अपनी बहन के ब्याह में खर्च किये और दो हज़ार अपने ब्याह में खर्च किये । एक हज़ार लगाकर एक दूकान की और एक हज़ार बचाकर रखा ; पर दूकान में फिर घाटा हुआ । तब मैंने मैन-पुरी छोड़ दी और इधर चला आया । नौकरी करने की इच्छा नहीं थी ; इसलिए मैंने इस्का-घोड़ा खरीद लिया और किराये पर चलाने लगा—तब से बराबर यही काम कर रहा हूँ । इसमें मुझे खाने-भर को मिल जाता है । अपने आनन्द से रहता हूँ, न किसी के लेने में हूँ, न देने में । अब बताइये, वह बाबू कहते थे कि चार आने पैसे के लिए मैं बेईमानी करता हूँ । अब मैं उनसे क्या कहता । यह तो दुनिया है, जो जिसकी समझ में आता है, कहता है । मैं भी सब सुन लेता हूँ । इसकेवाले बदनाम हैं ; इसलिए मुझे भी ये बातें सुननी पड़ती हैं ।'

श्यामलाल की आत्म कहानी सुनकर मैं कुछ देर तक स्तब्ध बैठा रहा । इसके पश्चात् मैंने कहा—भाई, तुम तो दर्शनीय आदमी हो, तुम्हारे तो चरण छूने को जी चाहता है ।

श्यामलाल हँसकर बोला—अजी बाबूजी, क्यों काँटों में घसीटते

हो ? मेरे चरण और आप लूयें—राम ! राम ! मैं कोई साधु थोड़ा ही हूँ ।

मैंने कहा—और साधु कैसे होते हैं ; उनके कोई सुखार्थ का पर तो लगा होता नहीं । सच्चे साधु तो तुम्हीं हो । यह सुनकर श्यामलाल हँसने लगा । इसी समय गंगापुर आ गया और हम लोग इसके से उतर कर अपने निहिष्ठ स्थान की ओर चल दिये ।

रास्ते में मैंने मनोहरलाल से कहा—इस संसार में अनेकों लाल गुदही में छिपे पड़े हैं । उन्हें कोई जानता तक नहीं ।

मनोहरलाल—जी हाँ ! और नामधारी ढोंगी महारमा ईश्वर की तरह पूजे जाते हैं ।



बात बहुत पुरानी हो गई है, पता नहीं महारमा श्यामलाल अब भी जीवित हैं या नहीं ; परन्तु अब भी जब कभी मुझे उनका स्मरण हो आता है, तो मैं उनकी काल्पनिक मूर्ति के चरणों में अपना मस्तक-जत कर देता हूँ



एथेंस का सत्यार्थी

यह उस बीते हुए युग की कहानी है, जब यूनान ऐश्वर्य और सभ्यता के शिखर पर था और संसार की सर्वोत्तम संतान यूनान में उत्पन्न होती थी। रात का समय था, काव्य और कला की कभी न भूलनेवाली प्राचीन नगरी एथेंस पर अन्धकार छाया हुआ था। चारों तरफ सन्नाटा था, चारों तरफ निस्तब्धता थी—सब बाज़ार खाली थे, सब गलियाँ निर्जन थीं और यह सुन्दर और आबाद नगरी रात के अँधरे में दूर से इस तरह दिखाई देती थी, जैसे किसी जंगल में धुँधली-सी अपूर्ण छाया का पड़ाव पड़ा हो।

पूरी नगरी पूरा विश्राम कर रही थी। उसके विद्वान् विज्ञासी बेटे अपनी-अपनी शय्या पर बेसुध पड़े थे। रंग-शालाएँ खाली हो चुकी थीं, विज्ञास-भवनों के दीपक बुझा दिये गये थे और द्वारपालों की आँखों की पलकें नींद के लगातार आक्रमणों के सामने झुकी जाती थीं ; परन्तु एक नवयुवक की आँखें नींद की शान्ति और शान्ति की नींद दोनों से वंचित थीं।

यह देवकुलीश एक विद्यार्थी था, जिसका आत्मा सत्य-दर्शन की प्यासी थी। वह एक बहुत बड़े धनवान् का बेटा था, उसकी सम्पत्ति उसके लिए हर तरह का विज्ञास खरीद सकती थी, वह अत्यन्त मनोहर था, यूनान-माता की सबसे सुन्दर बेटियाँ उसके प्रेम में पागल हो रही थीं। वह बहुत उच्चकोटि का तत्त्ववेत्ता था। उसकी साधारण युक्तियाँ भी विद्यालय के अध्यापकों की पहुँच से बाहर थीं ; परन्तु उसे इस पर भी शान्ति न थी। वह सत्यार्थी था। वह सत्य को खोज में अपने-आपको मिटा देने पर तुल्ला हुआ था। वह इस रास्ते में अपना सर्वस्व निछावर कर देने को तैयार था। मर्त्य-लोक की नाशवान खुशियाँ उसके लिए अर्थ-हीन वस्तुएँ थीं। यौवन और सौन्दर्य की सजीव मूर्तियों में उसके लिए कोई आकर्षण न था। वह चाहता था, किसी तरह सत्य को एक बार उसके वास्तविक रूप में देख ले। वह सत्य को बेपरदा, नंगा देखना चाहता था। ऐसा नहीं जैसा वह दिखाई देता है, बल्कि ऐसा जैसा वह वास्तव में है। वह अपनी इस मनोरथ-सिद्धि के लिए सब कुछ करने को तैयार था।

देवकुलीश रात-दिन पढ़ता था।

पढ़ता था और सोचता था। सोचता था और पढ़ता था ; मगर इसके स्वास्थ्य, चिन्तन और मनन से उसके प्यासे हृदय की प्यास मिटती न थी, बढ़ती जाती थी। सत्य का रोगी चिकित्सा से और ज्यादा बीमार होता जाता था।

(२)

विद्यालय के आँगन में विशाल एक ऊँचा चबूतरा था, जिस पर पता नहीं कब से मिनरवा, ज्ञान और विवेक की देवी, संगमरमर के वस्त्र पहने खड़ी थी। देवकुलीश पत्थर की इस मूर्ति के बरफ समान पैरों के निकट आकर घण्टों बैठा रहता और संसार के रहस्य पर चिन्तन किया करता था। यहाँ तक कि उसके मित्रों और सहपाठियों ने समझ लिया कि इसके मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो गया है। वे उसकी इस शोचनीय (?) दशा को देखते थे और कुढ़ते थे।

उस रात भी देवकुलीश देवी के पैरों के निकट बैठा था और रो रहा था—कृपा कर ! ऐ विद्या और विज्ञान की सब से बड़ी देवी, कृपा कर ! मेरे मन की अभिलाषा पूरी कर। मैं कई वर्षों से तेरी पूजा कर रहा हूँ। मैंने कई रातें तेरे पैरों को अपने आँसुओं से धोने में गुज़ार दी हैं। मैंने कई दिन केवल तेरे ध्यान में बिता दिये हैं। मेरी प्रार्थना के शब्द सुन और उन्हें स्वीकार कर !

देवकुलीश यह कहकर खड़ा हो गया और देवी के तेज-पूर्ण मुँह की तरफ देखने लगा ; मगर वह उसी तरह चुपचाप थी।

इतने में चन्द्रमा आकाश में उदय हुआ। उसके सुवर्ण और सुशीतल प्रकाश में देवी की मूर्ति और भी मनोहर दिखाई देने लगी।

अब देवकुलीश फिर मूर्ति के चरणों में बैठा था और फिर उसी तरह बालकों के सदृश रो-रोकर प्रार्थना कर रहा था, मानो वह संगमरमर की मूर्ति न थी, इस दुनिया की जीती-जागती स्त्री थी, जो सुनती भी है, जवाब भी देती है। बुद्धिमान् देवकुलीश ने पागलपन के आवेश में कहा—आज की रात फैसले की रात है। ऐ ज्ञान और विवेक की रानी ! तूने मेरे दिल में जिज्ञासा की आग सुलगाई है, तू ही हमें सत्य के शीतल जल से शान्त कर सकती है। सत्य कहाँ है ? — अजर, अमर, अटल सत्य। वह सत्य जिस पर बुद्धिमान् लोग

शास्त्रार्थ करते हैं, जिसका परिणत चिन्तन करते हैं, जिसे लोग एकान्त में तलाश करते हैं, मन्दिरों में ढूँढ़ते हैं, जिसके लिए दूर-दूर भटकते हैं । मैं वह उच्चकोटि का सत्य देखने का अभिलाषी हूँ । नहीं तो मैं चाँद की उज्ज्वल चाँदनी के सामने तेरे पैरों की सौगन्ध स्वाकर कहता हूँ, कि अपने निरर्थक जीवन को यहीं, इसी जगह समाप्त कर दूँगा । मुझे सत्यहीन जीवन की कोई आवश्यकता नहीं ।

यह कहकर देवकुलीश ने अपनी चादर के अन्दर से एक कटार निकाली और आत्महत्या करने को तैयार हो गया ।

एकाएक सफेद पत्थर की मूर्ति सजीव हो गई । उसने देवकुलीश के हाथ से कटार छीन ली, उसे आँगन के एक अँधेरे कोने में फेंक दिया और कहा—देवकुलीश !

देवकुलीश काँपता हुआ खड़ा हो गया और आशा, आनन्द और सन्देह की दृष्टि से देवी की ओर देखने लगा । क्या यह सच है ?

हाँ, यह सच था ; देवी के हाँठ सचमुच हिल रहे थे—देवकुलीश ! देवकुलीश !—देवकुलीश देवी का एक-एक शब्द पूरे ध्यान से सुन रहा था ।

‘देवकुलीश ! मौत का मार्ग अँधेरा है । तू मेरा पुजारी, मेरी आँखों के सामने इस मार्ग पर नहीं जा सकता । मेरे लिए असह्य है कि मेरे सामने कोई आत्म-हत्या कर जाय । बोल, क्या माँगता है ? मैं तेरी हर एक मनोकामना पूरी करने को तैयार हूँ ।’

देवकुलीश का दिल सफलता के आनन्द से धड़क रहा था । उसके मुँह से शब्द न निकलते थे । वह देवी के पैरों के निकट बैठ गया, और श्रद्धाभाव से बोला—पवित्र देवी ! मैं सत्य को उसके अपने असली स्वरूप में देखना चाहता हूँ । नंगा, बेपरदा, खुला सत्य । और कुछ नहीं, बस सत्य !

‘तू सत्य को जानना चाहता है !’—देवी के हाँठों से आवाज़

आई—‘तू आप सत्य है। यह आँगन भी सत्य है। मैं भी सत्य हूँ !
आँखें खोल, सत्य दुनिया के चपे चपे में मौजूद है।’

देवकुलीश—मगर उस पर परदे पड़े हुए हैं।

देवी—विवेक की आँख उन परदों के अन्दर का दृश्य भी देख सकती है।

देवकुलीश—पवित्र माता ! मैं सत्य को विवेक से नहीं, आँखों से देखना चाहता हूँ। मैं सोचकर नहीं देखना चाहता, देखकर सोचना चाहता हूँ।

देवी ने अपना पत्थर का सफेद, ठंडा, भारी हाथ देवकुलीश के कंधे पर रख दिया और मीठे स्वर में बोली—बेपरदा, नंगा सत्य आज तक दुनिया के किसी बेटे ने नहीं देखा, न देवताओं ने किसी मनुष्य को यह वरदान दिया है। तू अन्न का कीड़ा है, तेरी आँखों में यह दृश्य देखने की शक्ति कहाँ ! मेरा परामर्श है, यह खयाल छोड़ दे और अपने लिए कोई और वस्तु माँग, मैं अभी, इसी जगह दूँगी।

देवकुलीश—यूनान की सबसे बड़ी देवी ! मैं केवल नंगा सत्य देखना चाहता हूँ और कुछ नहीं चाहता।

देवी—मगर इसका मूल्य...

देवकुलीश—जो कुछ तू माँगे।

देवी—धन, दौलत, सौन्दर्य, यश सब तुझसे छूट जायेंगे। तुझे अपनी दुनिया को चाँद और सूरज के प्रकाश से भी वंचित करना होगा—शायद इस यज्ञ में तुझे अपने जीवन की आहुति देनी पड़े। बोल ! क्या अब भी तू सत्य का नंगा रूप देखना चाहता है ?

देवकुलीश—मुझे सब कुछ स्वीकार है।

देवी ने सिर झुका लिया।

देवकुलीश—परमेश्वर की सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मैं इसके लिए न त्याग सकूँ।

देवी ने फिर सिर उठाया और मुस्कराकर कहा—बहुत अच्छा ! तू सत्य को देख लेगा, तुझे सत्य दिखा दिया जायगा, सत्य का वास्तविक, नंगा रूप तेरे सामने होगा ; परन्तु एक बार नहीं, धीरे-धीरे चब ! आज सत्य का एक पर्दा उठा, बाक़ी एक वर्ष के बाद !

(३)

यह कहते कहते देवी ने अपनी सफेद पथर की चादर उतारकर चबूतरे पर रख दी और देवकुलीश को गोद में उठा लिया । देखते-देखते देवी के दोनों कन्धों पर परियों के-से दो पर निकल आये । देवी ने पर खोजे, और हवा में उड़ने लगी । पहले शहर, मन्दिरों के कलश, पर्वत ; फिर चँद, तारे, बादल सब नीचे रह गये । देवी देवकुलीश को लिये आकाश में उड़ी जा रही थी । थोड़ी देर बाद उसने देवकुलीश को बादलों के एक पहाड़ पर खड़ा कर दिया । देवकुलीश ने देखा, पृथ्वी उसके पाँच तले बहुत दूर, बहुत नीचे एक छोटे से तारे के समान टिम-टिमा रही है, और थी वह यह दुनिया, जिसको वह इतना बड़ा समझ रहा था ; मगर देवकुलीश का ध्यान इस ओर न था । उसने अपने पास छाया में छिपी हुई एक थुँबलो-सी चीज़ देखी, और देवी से पूछा—यह क्या है !

देवी—यही सत्य है । यह छिपकर यहाँ रहता है, यहीं से तेरी और अनगणित दूसरी दुनियाओं को अपनी दिव्य-ज्योति भेजता है । इसी के थुँधले प्रकाश में बैठकर सयाने लोग दुनिया की पहेलियाँ हल करते हैं, और गुरु अपने शिष्यों को जीवन की शिक्षा देते हैं । यही प्रकाश सृष्टि का सूरज है, यही ज्योति मानव-चरित्र का आदर्श है । तू कहेगा, यह तो कुछ ज्यादा प्रकाशमान् नहीं ; परन्तु देवकुलीश ! तेरे शहर के निकट जो नदी बहती है, यदि उसकी सारी रेत का एक-एक कण एक-एक सूरज बन जायगा, तब भी उसमें इतना प्रकाश न होगा, जितना इस पहाड़ की छाया में है ; मगर वह परदों में छिपा हुआ है ।

चञ्च, आगे बढ़ और इसका एक परदा फाड़ दे ।

देवकुलीश ने एक परदा फाड़ दिया । इसके साथ ही उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे संसार में एक नवीन प्रकार का प्रकाश फैल गया है । सच की छाया अब पहले से ज्यादा साफ़ और चमकदार थी । देवी देवकुलीश को फिर एथेंस में उड़ा लाई और अपनी सङ्गमरमर की चादर ओढ़कर फिर उसी चबूतरे पर उसी तरह चुपचाप खड़ी हो गई ।

अब देसकुलीश की दृष्टि में चँदी और सोने का कोई मूल्य न था । वह लोगों को दौलत के पीछे भागते देखता, तो उसे आश्चर्य होता था । वह चँदी को सफेद लोहा, और सोने को पीला लोहा कहता था, और इनकी प्राप्ति के लिए अपना परिश्रम नष्ट न करता था । उसे पढ़ने की धुन थी, दिन रात पढ़ता रहता था । उसके बाप ने उसका साधु-स्वभाव देख कह दिया, कि इसे मेरी जायदाद में से कुछ न मिलेगा ; परन्तु देवकुलीश को इसकी ज़रूर चिन्ता न थी । उसके मित्र-सम्बन्धी कहते—देवकुलीश ! यह आयु जवानी और गर्म खून की है । सफेद बालों और झुकी हुई कमर का ज़माना शुरू होने से पहले-पहल कुछ जमा कर ले । नहीं फिर बाद में पछतायेगा ।

देवकुलीश उनकी तरफ़ अद्भुत दृष्टि से देखता और कहता—तुम क्या कह रहे हो, मैं कुछ नहीं समझता ।

एथेंस के एक बहुत अमीर की कुँआरी बेटी अब भी देवकुलीश की मोटी-मोटी काली आँखों की दीवानी थी । वह देवकुलीश की इस दीन दशा को देखती और कुदती थी । देवकुलीश के खाने-पीने का प्रबन्ध भी वही करती थी, वना वह भूखा-प्यासा मर जाता ।

इसी तरह एक साल के तीन सौ पैंसठ दिन पूरे हो गये । रात का समय था, एथेंस पर फिर अन्धकारपूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था । देवकुलीश ने फिर देवी के पैरों पर सिर झुकाया । देवी उसे फिर बादलों के पहाड़ पर ले गई और देवकुलीश ने सत्य का दूसरा परदा फाड़

दिया । इस बार सत्य का प्रकाश और भी साफ़ हो गया देवकुलीश ने उसे देखा और उसकी आँखों को वह ज्ञान-चक्षु मिल गये, जो यौवन और सुकुमारता के लाल लहू के पीछे छिपे हुए बुढ़ापे की एक-एक झुर्री को देख सकते हैं । फिर वह अपनी बनावट और अविद्या की दुनिया को वापस चला आया । देवी फिर संगमरमर का बुत बनकर अपनी जगह पर खड़ी हो गई ।

(४)

एक दिन उसके एक मित्र ने कहा—देवकुलीश ! आज यूनान की सब कुँआरी लड़कियाँ एथेंस में जमा हैं और आज यूनान की सबसे सुन्दरी युवती को सौन्दर्य का पहला इनाम दिया जायगा । क्या तू भी चलेगा ?

देवकुलीश ने उसकी ओर मुस्कराकर देखा और कहा—सत्य वहाँ नहीं है ।

दूसरे दिन एक अध्यापक ने कहा—आज यूनान के सारे समझदार लोग विद्यालय में जमा हैं । क्या तुम उनसे मिलोगे ?

देवकुलीश ने ठण्डी आह भरकर जवाब दिया—सत्य वहाँ भी नहीं है ।

तीसरे दिन एक महन्त ने कहा—आज चाँद देवी के बड़े मन्दिर में देवताओं की पूजा होगी । क्या तुम भी आओगे ?

देवकुलीश ने लम्बी आह खींची और कहा—सत्य वहाँ भी नहीं है ।

और इस तरह इस सत्यार्थी ने जवानी ही में जवानी के सारे प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर ली । अब वह पूरा महन्त था ; मगर वह एथेंस के किसी मेले में नज़र न आता था, उसकी आवाज़ किसी सभा में न सुनाई देती थी ।

सत्यार्थी साल-भर एकान्त में पढ़ता रहता और इसके बाद बादलों

के पहाड़ पर जाकर सत्य का एक परदा फाड़ आता था। इसी तरह कई वर्ष बीत गये। उसका ज्ञान दिन-पर-दिन बढ़ता गया; मगर उसकी आँखें अन्दर घँस गई थीं, कमर झुक चुकी थी, सिर के सारे बाल सफेद हो गये थे। उसने सत्य की खोज में अपनी जवानी बुढ़ापे की भेंट कर दी थी; मगर उसे इसका दुःख न था, क्योंकि वह जवानी और बुढ़ापे दोनों की सत्ता से परिचित हो चुका था।

और लोग यह समझते थे देवकुलीश ने अपने लिए अपनी कोठरी को समाधि बना लिया है।

(५)

आखिर वह प्यारी रात आ गई, जिसकी प्रतीक्षा में देवकुलीश को अपने जीवन का एक-एक क्षण, एक-एक वर्ष, एक-एक शताब्दि से भी लम्बा मालूम होता था।

आज सत्य के मुँह से अन्तिम परदा उठेगा। आज वह सत्य को नंगा, बेपरदा देखेगा, जिसे संसार के किसी नश्वर बेटे ने आज तक नहीं देखा। आज उसके जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी हो जायगी।

आधी रात को उसे विवेक और विज्ञान की देवी ने अन्तिम बार गोद में उठाया, और बाइलों के पहाड़ पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

देवकुलीश ने सत्य की ओर अभीर होकर देखा।

देवी ने कहा—देवकुलीश ! देख, इसका प्रकाश कैसा साफ, कैसा तेज है। आज तक तूने इसके जितने परदे उतारे हैं, वे इसके परदे न थे, तेरी बुद्धि के परदे थे ! सत्य का एक ही परदा है; आगे बढ़ और उसे उतार दे; परन्तु अगर तू चाहे, तो अब भी लौट चल। मैं तुझे सातों समुद्रों के मोती और दुनिया का सारा सोना देने को

तैयार हूँ । तेरा गया हुआ स्वास्थ्य वापस मिल सकता है, तेरा उजड़ा हुआ जीवन खोटाया जा सकता है । मुझसे कह, तेरे सिर के सफेद बालों को छूकर फिर से काला कर दूँ । देवकुलीश ! अब भी समय है, अपना संकल्प त्याग दे ।

मगर बहादुर सत्यार्थी ने देवी का कहना न माना, और आगे बढ़ा । उसका कलेजा धड़क रहा था, उसके पाँव लकलका रहे थे, उसके हाथ काँप रहे थे, उसका सिर चकरा रहा था ; मगर वह फिर भी आगे बढ़ा । उसने अपनी आत्मा और शरीर की सारी शक्तियाँ हाथों में जमा कीं और उन्हें फैलाकर सत्य का अन्तिम परदा फाड़ दिया ।

ओ परमात्मा !

चारों ओर अन्धकार छा गया था ; ऐसा भयानक अन्धकार, जैसा इससे पूर्व देवकुलीश ने कभी न देखा था । उसने चिन्ताकर कहा— देवी माता ! यह क्या हो गया ? मुझे कुछ दिखाई नहीं देता ; वह जो परदे के पीछे था कहीं चला गया ।

देवी ने मधुर स्वर से कहा—देवकुलीश ! देवकुलीश !!

देवकुलीश ने आँधरे में टटोलते हुए कहा—देवी ! मुझे बता, वह कहीं है ! मैं कहीं हूँ, तू कहीं है !

देवी ने अपना हाथ धीरे से उसके कंधे पर रखा, और जवाब दिया—देवकुलीश ! तेरी आँखें नंगे सत्य का दृश्य देखने में असमर्थ होने के कारण फूट गईं । अब संसार की कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो उन्हें ठीक कर सके । मैंने तुझसे कहा था, यह विचार छोड़ दे ; परन्तु तूने न माना, और अब तूने देख लिया कि जब मनुष्य सत्य को नंगा देखना चाहता है तो क्या देखता है । सत्य परदों के अन्दर ही से देखा जा सकता है । जब उसका परदा उतार दिया जाता है तो मनुष्य वह देखता है, जो कभी नहीं देख सकता ।

देवकुलीश बादलों के पहाड़ पर मुँह के बल गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा ।

हज़ारों वर्ष बीत चुके हैं ; मगर एथेंस के सत्यार्थी की लोज अभी तक जारी है । अगर कोई आदमी बादलों के पहाड़ की सुनसान घाटियों में जा सके, तो उसे देवकुलीश के रोने की आवाज़ अभी उसी तरह सुनाई देगी ।

भूलमला

मैं बरामदे में टहल रहा था। इतने में मैंने देखा कि विमला दासी अपने आँचल के नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैंने पूछा—क्यों री ! यह क्या है ? वह बोली—भूलमला। मैंने फिर पूछा—इससे क्या होगा ? उसने उत्तर दिया—नहीं जानते हो बाबू, आज तुम्हारी बड़ी भाभी पण्डितजी की बहू की सखी होकर आई हैं, इसीलिए मैं उन्हें भूलमला दिखाने जा रही हूँ।

पदुमलाल पुत्रालाल बरुशी]: ५७ : [गल्प-संसार-माला

तब तो मैं भी किताब फेंककर घर के भीतर दौड़ गया। दीदी मे जाकर मैं कहने लगा—दीदी, थोड़ा तेज़ तो दो।

दीदी ने कहा—जा, अभी मैं काम में लगी हूँ।

मैं निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। फिर मैं सोचने लगा—यह अवसर जाने न देना चाहिये, अच्छी दिवलगो होगी। मैं इधर-उधर देखने लगा। इतने में मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकड़े पर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और एक दियासलाई का बक्स लेकर भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देखकर भाभी ने पूछा—कैसे आये बाबू!—मैंने बिना उत्तर दिये ही मोमबत्ती के टुकड़े को जलाकर उनके सामने रख दिया। भाभी ने हँसकर पूछा—यह क्या है?

मैंने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—फलमल।

भाभी ने कुछ न कहकर मेरे हाथ पर पाँच रुपए रख दिये। मैं कहने लगा—भाभी, क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है? भाभी ने हँसकर कहा—तो कितना चाहिये? मैंने कहा—कम से कम एक गिनी। भाभी कहने लगी—अच्छा इस पर लिख दो; मैं अभी देती हूँ।

मैंने तुरत ही चाकू से मोमबत्ती के टुकड़े पर लिख दिया—‘मूल्य एक गिनी।’ भाभी ने गिनी निकालकर मुझे दे दी और मैं अपने कमरे में चला आया। कुछ दिनों बाद गिनी के खर्च हो जाने पर मैं यह घटना बिलकुल भूल गया।

(२)

द्व वर्ष व्यतीत हो गये। मैं बी० ए०, एल-एल० बी० होकर हला-हाबाद से घर लौटा। घर की वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी। न भाभी थी, न विमला दासी ही। भाभी हम लोगों की सदा के लिए छोड़कर स्वर्ग चली गई थी, और विमला कटङ्गी में खेती करती थी।

सन्ध्या का समय था। मैं अपने कमरे में बैठा न-जाने क्या सोच रहा था। पास ही कमरे में पड़ोस की कुछ स्त्रियों के साथ दीदी बैठी थी। कुछ बातें हो रही थीं, इतने में मैंने सुना, दीदी किसी स्त्री से कह रही हैं—कुछ भी हो बहिन, मेरी बड़ी बहू घर की लक्ष्मी थी। उस स्त्री ने कहा—हाँ बहिन, खूब याद आई, मैं तुमसे पूछनेवाली थी। उस दिन तुमने मेरे पास सखी का सन्दूक भेजा था न ? दीदी ने उत्तर दिया—हाँ बहिन, बहू कह गई थी, उसे रोहिणी को दे देना। स्त्री ने कहा—उसमें सब तो ठीक था, पर एक विचित्र बात थी। दीदी ने पूछा—कैसी विचित्र बात ? वह कहने लगी—उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमें एक जगह खूब हिफाजत से रेशमी रुमाल में कुछ बँधा हुआ मिला। मैं सोचने लगी यह क्या है। कौतूहलवश उसे खोलकर मैंने देखा। बहिन, कहो तो उसमें भला क्या रहा होगा ? दीदी ने उत्तर दिया—गहना रहा होगा। उसने हँसकर कहा—नहीं, गहना न था। वह तो एध अभजर्जी मोमबत्ती का टुकड़ा था और उस पर लिखा था—‘मृत्यु एक गिनी।’ क्षण-भर के लिए मैं ज्ञान-शून्य हो गया, फिर अपने हृदय के आवेग को न रोककर मैं उस कमरे में घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा—वह मेरी है ; मुझे दे दो ! कुछ स्त्रियाँ मुझे देखकर भागने लगीं। कुछ इधर उधर देखने लगीं। उस स्त्री ने अपना सिर ढँपते-ढँपते कहा—अच्छा बाबू, मैं कल उसे भेज दूँगी। पर मैंने शत को ही एक दासी भेजकर उस टुकड़े को मँगा लिया। उस दिन मुझे कुछ नहीं स्थाया गया। पूछे जाने पर मैंने यह कहकर टाल दिया कि सिर में दर्द है। बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता रहा। जब सब सोने के लिए गये तब अपने कमरे में आया। मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी—सिर का दर्द कैसा है ? पर मैंने कुछ उत्तर न दिया, चुपचाप जब से मोमबत्ती को निकालकर उसे जलाया और उसे एक कोने में रख दिया।

पदुमलाल पुष्पात्ताल बरुशी] : ५९ : [गल्प-संसार-माला

कमला ने पूछा—यह क्या है ?

मैंने उत्तर दिया—भूलमला ।

कमला कुछ न समझ सकी । मैंने देखा कि थोड़ी देर में मेरे
भूलमले का क्षुद्र आलोक रात्रि के अंधकार में विलीन हो गया ।

खेल

मौन-सुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हँस रही थी। उस समय गंगा के निर्जन बालुका-तीर पर एक बालक और एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगातट के बालू और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड़ कर रहे थे।

प्रकृति इन निर्दोष परमात्म-खंडों को निरतब्ध और निर्निमेष निहार रही थी। बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छुटा-छुट उड़ा रहा था। पानी मानो छोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने

के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप-थोपकर एक भाड़ बना रही थी।

बनाते-बनाते भाड़ से बालिका बोली—देख, ठीक नहीं बना तो मैं तुझे फोड़ दूँगी। फिर बड़े प्यार से थपका-थपकाकर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी, इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊँगी—वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर !... नहीं, वह कुटी मैं नहीं रहेगा, बाहर खड़ा खड़ा भाड़ में पत्ते भोंकेगा। जब वह हार जायगा, बहुत कहेगा, हाथ जोड़ेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर लूँगी।

मनोहर उभर अपने पानी से हिलमिलकर खेल रहा था। उसे क्या मालूम कि यहाँ अकारण ही उस पर रोष और अनुग्रह किया जा रहा है।

बालिका सोच रही थी, मनोहर कैसा अच्छा है। पर वह दंगई बड़ा है। हमें छेड़ता ही रहता है। अब के दंगा करेगा, तो हम उसे कुटी में साझी नहीं करेंगे। साझी होने को कहेगा तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब साझी करेंगे।

बालिका सुरबाला सातवें वर्ष में थी। मनोहर कोई दो साल उससे बड़ा था।

बालिका को अचानक ध्यान आया, भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे ? मेरा क्या, मैं तो रह जाऊँगी ; पर मनोहर तो जलेगा। फिर सोचा, उससे मैं कह दूँगी, भाई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास वह बैठने को आया ही—तो ? मैं कहूँगी, भाई, ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ। ... पर वह मेरे पास आने की ज़िद करेगा क्या ? ... ज़रूर करेगा, वह बड़ा हठी है। पर मैं उसे आने नहीं दूँगी। बेचारा तपेगा—भला कुछ ठीक है ! ज़्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूँगी, कहूँगी—अरे जल जायगा मूरख ! यह सोचने पर उसे बड़ा मज़ा सा

आया, पर उसका मुँह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही बक्का खाकर मनोहर के गिरने का हास्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भाँति प्रत्यक्ष हो गया।

बालिका ने दो-एक पक्षके हाथ भाड़ पर लगाकर देखा—भाड़ अब बिलकुल बन गया है। माँ जिस सतर्क सावधानी के साथ अपने नव-जात शिशु को बिछौने पर लेटाने को छोड़ती है, वैसे ही सुरबाजा ने अपना पैर धीरे-धीरे भाड़ के नीचे से खींचकर निकाला। इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती-सी जाती थी। उसके पैर पर ही तो भाड़ टिका है पैर का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े ! पैर साफ़ निकालने पर भाड़ जब ज्यों-का-त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद से नाच उठी।

बालिका अब एकदम ही बेवकूफ मनोहर को इस अलौकिक चातुर्य से परिपूर्ण भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच जाने को उद्यत हो गई। सूखे लड़का पानी से उलझ रहा है ; यहाँ कैसी ज़बरदस्त कार-गुजारी हुई है—सो नहीं देखता ! ऐसा पक्का भाड़ उसने कहीं देखा भी है !

पर सोचा, अभी नहीं ; पहले कुटी तो बना लूँ। यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बड़े धीरे से भाड़ के सिर पर छोड़ दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेत धीरे-धीरे वहाँ छोड़कर सुरबाजा ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड़ तैयार हो गया। पर पक्षों का भाड़ जब बालिका ने पूरा-पूरा याद किया, तो पता चला कि एक कमी रह गई। धुआँ कहाँ से निकलेगा ! तनिक सोचकर उसने एक सींक टेढ़ी करके उसमें गाड़ दी। बस, ब्रह्माण्ड का सबसे सम्पूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुन्दर वस्तु तैयार हो गई।

वह उजड़ु मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन करावेगी, पर अभी ज़रा थोड़ा देख तो ले । सुरबाजा, मुँह खुला, आँख थिर, इस भाङ-श्रेष्ठ को देख-देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी । परमात्मा कहाँ बिराजते हैं, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताये, इस भाङ के जादू में ।

मनोहर अपनी सुरी-सुरी सुरी की यादकर, पानी से नाता तोड़ और हाथ की लकड़ी को भरपूर जोर से गङ्गा की धारा में फेंक जब सुड़ा, तब श्री सुरबाजा देवी एकटक अपनी परमात्मा-लीला के जादू को बूझने और सुलझाने में लगी हुई थीं ।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा—श्रमती बिलकुल अपने भाङ में अटकती हुई हैं । उसने जोर से क्रदक्रहा लगाकर एक लात में भाङ का काम-तमाम कर दिया !

न-जाने क्या किला फूतह किया हो, ऐसे महत्त्व से भरा मनोहर चिल्लाया—सुरी रानी !

सुरी रानी मूक खड़ी थीं । उनके मुँह पर जहाँ विशुद्ध रस था, वहाँ अब एक शून्य फैल गया । रानी के सामने एक स्वर्ग सागोपाग उपस्थित था । वह उन्हीं का अपना रचा हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक-एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थीं । हा, हंत ! वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़-फोड़ डाला ! रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गई ।

हमारे विद्वान् पाठकों में से कोई होता, तो उस झूठमूठ की मूर्ख रानी को समझाता—यह संसार क्षणभंगुर है । इसमें दुःख क्या और सुख क्या । जो जिससे बनता है, वह उसी में लय हो जाता है । इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है ? यह संसार जल का बुदबुदा है, फूटकर किसी रोज़ जल में ही मिल जायगा । फूट जाने में ही बुदबुदे की

सार्थकता है। जो यह नहीं समझते, वे दया के पात्र हैं। री, मूर्खा लड़की, तू समझ। सब ब्रह्मांड ब्रह्म का है, और उसी में लीन हो जायगा। इससे तू किसलिए व्यर्थ व्यथा सह रही है ? रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया, रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर, इससे शिक्षा ले। जिसने लात मारकर उसे तोड़ा है, वह तो परमात्मा का केवल साधन-मात्र है। परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं। लड़की, तू मूर्ख क्यों बनती है ? परमात्मा की इस शिक्षा को समझ और परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास कर...आदि आदि।

पर बेचारी बालिका का दुर्भाग्य, कोई विज्ञ भीमान् पंडित-तत्त्वों-पदेश के लिए उम्र गंगा-तट पर नहीं पहुँच सके। हमें तो यह भी मंदेह है कि सुरी एकदम इतनी जड़-मूर्खा है कि यदि कोई परोपकार-रत पंडित परमात्मा-निर्देश से वहाँ पहुँचकर उपदेश देने भी लगते, तो वह उनकी बात को न सुनती और न समझती। पर, अब तो वहाँ निर्धुद्धि-शठ मनोहर के सिवा कोई नहीं है, और मनोहर विश्व-तत्त्व की एक भी बात नहीं जानता। उसका मन न जाने कैसा हो रहा है। कोई उसे जैसे भीतर-ही-भीतर मसोसे डाल रहा है। लेकिन उसने बनकर कहा—
सुरो दुत् पगली, रूठती है !

सुरबाला वैसी ही खड़ी रही।

‘सुरी, रूठती क्यों है ?’

बाला तनिक न हिली।

‘सुरी ! सुरी !...ओ, सुरो।’

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज़ हठान् कँपी-सी निकली।

सुरबाला अब और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कंठन का सामना शायद उससे न हो सका।

‘सुरी,...ओ सुरिया ! मैं मनोहर हूँ...मनोहर !...मुझे मारती

नहीं !'—यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है ।

'हम नहीं बोलते ।'—बालिका से बिना बोले न रहा गया । उसका भाड़ का स्वर्ग शायद विलीन हो गया और उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान कॉपती हुई मनोहर की आवाज़ ने ले लिया । वही आवाज़ मानो सब कहीं व्यापकर चित्र-सी लिख गई ।

मनोहर ने बड़ा बल खगाकर कहा—सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है, वह बड़ा खराब है । बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती ! उसे एक थप्पड़ लगा—वह अब कभी क्रसूर नहीं करेगा ।

बाला ने कड़कर कहा—चुप रहो जी ।

'चुप रहता हूँ ; पर मुझे देखोगी भी नहीं ?'

'नहीं, देखते ।'

'अच्छा मत देखो । मत ही देखो । मैं अब कभी सामने न आऊँगा, मैं इसी लायक हूँ ।'

'कह दिया तुमसे, चुप रहो । हम नहीं बोलते ।'

बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का ख़त्म हो चुका था । वह तो जाने कहाँ उड़कर खो चुका था । यह कुछ और ही भाव था । यह एक उत्साह था जो व्याज-कोप का रूप धर रहा था । दूसरे शब्दों में यह ख़ोश था ।

मनोहर बोला—लो सुरी, मैं नहीं बोलता । मैं बैठ जाता हूँ । यहीं बैठा रहूँगा । तुम जब तक न कहोगी, न उठूँगा, न बोलूँगा ।

मनोहर चुप बैठ गया । कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली—हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी ? हमारा भाड़ बना के दो ।

'लो, अभी लो ।'

'हम वैसा ही लेंगे ।'

‘वैसा ही लो, उससे भी अच्छा ।’

‘उस पै हमारी कुटी थी, उस पै धुएँ का रास्ता था ।’

‘लो, सब लो । तुम बताती न जान्ना, मैं बनाता जाऊँ ।’

‘हम नहीं बतायेंगे । तुमने क्यों तोड़ा ? तुमने तोड़ा तुम्हीं बनाओ ।’

‘अच्छा । पर तुम इधर देखो तो ।’

‘हम नहीं देखते, पहले भाड़ बना के दो ।’

मनोहर ने एक भाड़ बनाकर तैयार किया । कहा—‘लो, भाड़ बन गया ।’

‘बन गया ?’

‘हाँ ।’

‘धुएँ का रास्ता बनाया ? कुटी बनाई ?’

‘सो कैसे बनाऊँ—बताओ तो ।’

‘पहले बनाओ, तब बताऊँगी ।’

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक पत्ते की ओट लगाकर कहा—‘बना दिया ।’

तुरन्त मुड़कर सुरबाखा ने कहा—‘अच्छा दिखाओ ।’

‘सींक ठीक नहीं लगी जी, पत्ता ऐसे लगेगा !’—आदि-आदि संशोधन कर चुकने पर मनोहर को हुक्म हुआ—

‘थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेंगे ।’

मनोहर पानी लाया ।

गंगाजल से करपात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुरों रानी ने एक जात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया ।

सुरबाखा रानी हँसी से नाच उठी ! मनोहर उत्फुल्लता से क़हक़हा लगाने लगा । उस निर्जन प्रान्त में वह निर्मल शिशुहास्य-रव ज़हरें ज़ेता हुआ व्याप्त हो गया । सूरज महाराज बाजकों जैसे ज़ाज़-ज़ाज़ मुँह से गुज़ाबी हँसी हँस रहे थे । गंगा मानो जान-बुझकर किलकारियाँ भर

जैनेन्द्रकुमार]

। ६७ :

[गल्प संसार-माला

रही थीं । और—और वे लम्बे ऊँचे दिग्गज पेड़, दार्शनिक पण्डितों की भाँति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मन ही मन गम्भीर तत्वा-वल्लोचन कर, कहीं हँसी में भूले मूर्खों पर आँसू बहाना तो नहीं चाह रहे थे— वे बेचारे !

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से । रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराज में आई थी, पति की प्यारी और सास की दुजारी, चौदह वर्ष की बालिका । भंडार घर की चाभी उसकी करबनी में लटकने लगी, नौकरी पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ ; सास जी ने माझा लिया और पूजा पाठ में मन लगाया ।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौक़ मिलता, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के झुंके-पंजे। रामू की बहू हाँड़ी में घी रखते-रखते ऊँच गई और बचा हुआ घी कबरी-के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यह यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुरवार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ़ चटी हुई। बाज़ार से बाज़ाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बाज़ाई गायब। रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनो सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, इसमें दूध, बाज़ाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ जुग गई, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के होसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिन्नती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ, और पतिदेव को मिन्नता था रुखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिरता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औंटे गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा मान अण्डा है, ताक की ऊँचाई अन्दाज़ी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सास-जी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फर्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौबी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आई, किस ढाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भोंति बातें सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माँजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या

बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोलों—हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला !

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुलाय जाई।

सास की जान में जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़के पण्डितजी को बुला ला।

बिह्ली की हत्या की खबर बिजजी की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ़ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े। पण्डिताइन से मुसकराते हुए बोले—भोजन न बनाना। लाजा घासीराम की पतोहू ने बिह्ली मार डाली। प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फीट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पसेरी खुराकवाले पण्डितों को हूँदा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाहत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की मा, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख ! बाक़ी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मा ने कहा—पण्डितजी, बिह्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?

पण्डित परमसुख ने पन्ना देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महुँरत भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है ।

‘यही कोई सात बजे सुबह ।’—मिसरानीजी ने कहा ।

पण्डित परमसुख ने पन्ने के पन्ने डकटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाई, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा । चेहरे पर धुँधलापन आया । माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गंभीर हो गया, ‘हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त’ में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है ! रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ ।’

रामू की मा की आँखों में आँसू आ गये । ‘तो फिर पण्डितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलायें ?’

पण्डित परमसुख मुसकराये—रामू की मा, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जायगा ।

रामू की मा ने कहा—पण्डितजी इसलिये तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय ?

‘किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अप-वित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद एक-दो दिन का पाठ हो जाय ।’

छन्नु की दादी—हाँ और क्या, पण्डितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय ।

रामू की मा ने कहा—तो पण्डितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?

पण्डित परमसुख मुसकराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने

कहा—बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की मा, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय । लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही । सो रामू की मा, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-एकस सेर से कम की क्या होगी ; हाँ, कम से कम एकस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा !

रामू की मा ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—अरे बाप रे ! एक से तोला सोना ! पण्डितजी यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम निकलेगा !

पण्डित परमसुख हँस रहे—रामू की मा ! एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे रूप का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया ।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई । पण्डित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं । रामू की मा, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना ।

‘पूजा का सामान कितना लगेगा ?’

‘अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन-भर नमक भी लगेगा । बस इतने से काम चल जायगा ।’

‘अरे बाप रे ! इतना सामान, पण्डितजी इसमें तो सौ-डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जायगा ।’ रामू की मा ने रुआंसी होकर कहा ।

‘फिर इससे कम में तो काम न चलेगा । बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मा ! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो ! यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है । आप लोग कोई ऐसे वैसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़-सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है ।’

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की मा ने कहा—पण्डितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिये ।

छन्नू की दादी ने कहा—और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं । दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं ।

मिसरानी ने कहा—और फिर माजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे । इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा !

रामू की मा ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डितजी के साथ । पण्डित परमसुख मुसकरा रहे थे । उन्होंने कहा—रामू की मा एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिभमे थोड़ा-सा खर्चा है । सो उससे मुँह न मोड़ो ।

एक टण्डी साँस लेते हुए रामू की मा ने कहा—अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा ।

पण्डित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले—रामू की मा ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला । इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा ।

‘अरे, पण्डितजी, रामू की मा को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न ।’ मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की मा ने एक स्वर में कहा ।

रामू की मा ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब

जमकर आसन जमाया ।

‘और क्या हो ?’

‘एकौस दिन के पाठ के इक्कीस रुपए और एकौस दिन तक दोनो बख्त पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा ।’ कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा--सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनो समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा ।

‘यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो...’ मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डितजी पर व्यंग किया ।

‘अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मा, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बित्तली बनवा लाऊँ—दो घंटे में मैं बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो--और देखो पूजा के लिए...’

पण्डितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हॉफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे । रामू की मा ने घबड़ा कहा--अरी क्या हुआ री ?

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा--माजी, बित्तली तो ठठकर भाग गई !

उपहार

विमला स्नाना परोस रही थी। कमल बैठा पत्र लिख रहा था। वह सोचता था कि जब इसे समाप्त कर लूँगा, तब षट्ठूँगा। देर ही क्या है, कुछ भी तो और अधिक नहीं लिखना है। बस, यही दो-तीन—हाँ, दो ही—पंक्तियाँ और लिखने को हैं कि फिर मैं हूँ और भोजन।

और विमला मन ही मन झुंझना रही थी कि जब तक मैं शाक पकाऊँ-पकाऊँ, तब तक तो आफत मचा दी। दो-दो मिनट में विकल हो-होकर पूछते रहे कि कितनी देर है—कितनी देर है ! और अब जब

मैं खाना परोसने लगी, तो 'आया, आया बस अभी हाल आया' कह रहे हैं—मगर आते नहीं ! बस इनकी यही प्रकृति मुझे अच्छी नहीं लगती । कितनी तकलीफ़ होती है खाना पकाने में । बनाना पड़े, तो मालूम हो जाय । और मालूम क्या हो जाय, खुद भी तो न खा सकें उसे ! फिर भी किसी तरह जो मर-खप के बना भी लूँ, तो यह हाल है इनका कि मुझे ही बेवकूफ़ बनना पड़ता है । कुछ कहो, तो भूत जवाब दे बैठेंगे कि फिर बनाती ही बेकार हो—मैंने तो हजार बार कहा कि महाराजिन रख लो ।...मैं भी बैठी रहूँगी, इसी तरह । जब बुलाना व्यर्थ है, तो बुलाया ही क्यों जाय ? न, मैं अब नहीं बुलाऊँगी नहीं, किसी तरह नहीं ।

‘अरे सुनती हो ?’

विमला को ही लक्ष करके कमल ने कहा था । लेकिन विमला ने सुनकर भी नहीं सुना । उसने कोई उत्तर नहीं दिया । वह क्यों उत्तर दे ? किसको उत्तर दे ? किसे उसके उत्तर की अपेक्षा है ? जब कहते-कहते हार गई, तब नहीं आये । और अब इतनी देर के बाद भी, वहीं से कहते हैं—सुनती हो ? कौन सुनती है ? कोई नहीं सुनती ! क्यों सुने कोई ? क्या पढ़ी है उसे, जो सुने ? वह नहीं सुनती है । कोई नहीं सुन रहा है । कोई सुनने क्यों लगा ? वह सुनती तो है, मगर नहीं सुनती । हाँ, नहीं सुनती ।

कमल अब उठकर उसके पास चला आया । वह चला तो आया, पर निकट खड़ा रहकर बोला—कुछ लोग आ गये हैं और उनसे इसी समय दो बातें कर लेनी हैं । बेचारे बड़ी दूर से आये हैं । मुझसे यह नहीं हो सकता कि उन्हें बैरंग वापस लौटा हूँ । कुछ वक्त देना ही पड़ेगा । कुछ ऐसी ही आवश्यकता है । समझती हो न ? तुम अब खाना खाओ । मुझे शायद देर ही लग जाय ।...शायद क्या, बखिर्क निश्चित है देर लग जाना ।

विमला ने पहले तो चाहा कि वह चुप ही रहे अब भी, उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे। किन्तु वह वास्तव में इस प्रकार की नारी नहीं है। परिस्थिति और कारण को लेकर इसकी मर्यादा की अवमानना करना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है। वह अतीत से उल-
झती रहती है, क्योंकि उसी का प्रभाव लेकर भविष्य को देखती है ; किन्तु वर्तमान की उपेक्षा उसे स्वीकार नहीं होती। अतएव उसने कहा—किन्तु क्या दस-पाँच मिनट के लिए उन्हें रोक नहीं सकते ? वे लोग क्या तुम्हारा इस समय भोजन करना भी रोक देना उचित सम-
झेंगे ? तुम्हारी असुविधा का क्या उन्हें कुछ भी खयाल न होगा ?

कमल ने लक्ष्य किया, विमला खुद भी भूखी है। समय भी अधिक हो गया। इसी स्थिति में उसने भोजन बनाया है। कितनी देर से वह प्रतीक्षा में बैठी है और अब, जब कि मुझे उसके साथ बैठकर खाना चाहिये, मैं उससे इस प्रकार का प्रस्ताव कर रहा हूँ !

उसने एक बार फिर जो विमला के उत्तम अदृष्ट मुख की ओर ध्यान से देखा तो उसे अपना प्रस्ताव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत हुआ। वह लौट पड़ा। लौटते हुए कह गया—अच्छा, तो मैं अभी आया। उन्हें कमरे में आदर के साथ बिठा आऊँ और साथ ही दस मिनट तक और अधिक प्रतीक्षा करने की अनुमति ले आऊँ।

‘ओह ! तुम आये हो—मेरे राधाकान्त बाबू—यह डेपूटेशन लेकर, अच्छा। लेकिन, यार बहुत दिनों में मिले हो, और फिर इस डेपूटेशन के साथ ! खैर, मैं अभी आया। मैंने अभी तक भोजन नहीं किया है। कुछ इतने आवश्यक कार्यों में लगा रहा कि भोजन करने तक को समय पर न उठ सका। जा ही रहा था कि पता चला, आप लोग तशरीफ़ लाये हैं।’ कमल ने स्वाभाविक उल्लास-सुखरित ढंग से कहा।

‘अच्छा तो है। कर आओ भोजन ; लेकिन अकेले-ही-अकेले भोजन कर लोगे ?’ राधा बाबू ने हास के मृदुल दोहन में, साधारण-

तया कह दिया—उसी प्रकार, जैसे कोई भी मित्र दूसरे से ऐसी स्थिति में प्रायः कह ही देता है।

‘अच्छी बात है, मेरा सौभाग्य ! चलो, तुम भी चलो।’ कमल के उत्तर के साथ उसका हार्दिक उत्साह भी मिश्रित होकर फूट निकला।

‘ऐसे नहीं जाता। इस तरह तुमको तो कुछ मालूम न होगा, किन्तु दूसरी आत्मा को जो आकस्मिक कष्ट होगा, उसे मैं कैसे सहन करूँगा ? न यार कमलेश, मुझे इस समय भोजन नहीं करना है, मैं तो यों ही कह उठा था। मैं भोजन कर चुका हूँ।’ राधा बावू कहते-कहते गम्भीर हो उठे।

कमल ने लक्ष्य किया, यह राधाकान्त एक समय कितना चटुल था ! क्लासभर इसके मारे परेशान, बल्कि एक प्रकार से आन्दोलित रहता था। और आज देखता हूँ कि इस कालान्तर में ही वह कैसा विवेकशील बन गया है।

तब उस राधाकान्त के प्रति कमल पहले अजेय आदरभाव से देख-कर रह गया, फिर कुछ सोच-समझकर बोला—नहीं राधे, असुविधा की कोई बात न होगी। कम पड़ेगा तो कुछ और बाज़ार से मँगवा लूँगा। चलो, चलो ; अब तुम्हें चलना पड़ेगा।

×

×

×

‘मेरे एक मित्र भी खायेंगे विमला ! बड़े ज़बरदस्त आदमी हैं। इच्छामात्र करने से सफलता इनके चरण चूमती रही है। मुझे इनका क्लासफ़ेलो रहने का गौरव प्राप्त हो चुका है। मुझे पता ही न था कि जेल जा-जाकर भी यह शैतान बजाय दुर्बल पढ़ने के इतना मोटा पड़ जायगा। देखती क्या हो, वज़न में तीन मन से कम न होगा। यह जो कुछ भी तुमने बना रखा है, मैं तो समझता हूँ, केवल इसके लिए भी काफी न होगा।’ कमल ढूँढ़-ढूँढ़कर ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रहा है, जिससे विमला को पता चल जाय कि उसका यह मित्र

ऐसा वैसा साधारण व्यक्ति नहीं है । बड़ा आदमी तो वह है ही, साथ ही उसका घनिष्ट मित्र भी है ।

तब विमला ने स्वामी के इस घनिष्ट मित्र को केवल एक दृष्टि से देखकर सारी को सिर पर, आगे तक, कुछ और अधिक खिसका लिया है । दो थालियों में भोजन जैसा परोसकर रखा था, उसे पूर्ववत् न रख कर उसमें थोड़ा-थोड़ा कम कर लिया है, क्योंकि आकस्मिक आतिथ्य और समय-असमय के जलपान के लिए जो मिष्ट और सज्जोने खाद्य पदार्थ उसने बना रखे हैं, उनका भी उपयोग उसे अब करना है । बाज़ार से ही कुछ मँगाना पड़ा, तो फिर गृहस्थी की मर्यादा हो क्या रही ?

तुरन्त उसने कहा—आइये ।

तब कमल अपने राधे को लेकर भोजन करने बैठ गया । वह भोजन कर रहा है और साथ ही साथ कुछ सोचता भी जाता है । यों निरन्तर उसे कुछ न कुछ सोचना ही पड़ता है । बात कम, काम अधिक—यही उसकी प्रकृति है । किन्तु जब कोई मित्र आया हो और साथ में बैठा भोजन कर रहा हो, तब भी मौन ही बने रहना तो कुछ अधिक उत्तम या आवश्यक, प्रीतिकर या शोभन, प्रतीत नहीं होता । मानो इसी बात को लक्ष्यकर कमल ने कह दिया—और कहो राधे, खूब अच्छी तरह से हो न ? किसी प्रकार की कोई असुविधा या कष्ट या...और क्या कहूँ ?

अन्तिम शब्द कहते-कहते कमल राधे के मुँह की ओर देखकर हँस पड़ा ।

‘देखता हूँ, तुम बहुत बड़े आदमी हो गये । यहाँ तक कि तुमने इतना वैभव अर्जित कर लिया, इतना कि तुम्हें देखकर मुझे ईर्ष्या होती है, तो भी तुम्हारा वह असाधारण सारल्य ज्यों का त्यों बना है !’ राधे भोजन करते हुए अपनी ये बातें इतने मन्द क्रम से करता जाता है कि न तो उसकी आहार-गति प्रतिहत होने पाती है, न वर्ताविनोद में ही किसी प्रकार की अरोचक गति का संयोग हो पाता है । साथ ही साथ

वह कभी-कभी विमला पर भी एक दृष्टि डाल देता है ।

‘तो तुम्हारा खयाल यह है कि काल-गति से हमारी प्रकृति भी बदल जाती है ! लेकिन भाई राधे; मैं ऐसा नहीं मानता । जीवन के प्रकम्पित अवधान हमारी गति बदल सकते हैं, हमारे आचार-व्यवहार की रूप-रेखा को भी उलट-पुलट डालते हैं । मैं यह मानता हूँ । किन्तु...किन्तु हमारी नैसर्गिक प्रकृति पर उनका अनुशासन कभी चला नहीं सकता, क्षणिक परिवर्तन करने में भले ही वे यदा कदा सफल होते रहें ।’

राधे कमल की इस बात को सुनकर मुसकराने लगा ।

और कमल ने उसके इस हास की यथार्थता को लक्ष्य करके कहा—जान पड़ता है, मेरे साथ तुम्हारा मतभेद पूर्ववत् बना है ।

विमला दोनों को बातें करती छोड़कर भण्डार में चली गई थी । और आकर उसने दो-दो कटोरियों में मिष्ठान्न और नमकीन पदार्थ दोनों थालियों के निकट रख दिये । तब उसी समय एक कटोरी से कुछ खुरमे एक साथ उठाकर मुँह में डालने के पूर्व राधे बोला—तुम्हारे गार्हस्थ्य-जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कमलेश !

कमल हँसने लगा । बोला—अच्छा-अच्छा, यह बात है ! धन्य-वाद । फिर विमला की ओर उत्फुल्ल लोचनों से देखकर कहने लगा—सुनती हो विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है ।

विमला चाहती तो उत्तर में कुछ कह सकती थी । किन्तु वह कुछ कह न सकी । हाँ, विकल्प में थोड़ी मुड़कर, कढ़ाई में रखे हुए शाक को एक कटोरी में सगुहालकर रखने में व्यस्त अवश्य हो गई ।

तब राधे ने उस समय न तो उस विमला को ही कुछ कहने का अवसर दिया, न कमलेश को । अब वह उसकी उस बात पर आ गया, जिस पर उसे मतभेद था । वह बोला—हाँ, तुम्हारी उस बात को

तो मैं भूल ही गया था, प्रकृति-परिवर्तन के सम्बन्ध में जो तुमने अभी कही थी ।

‘हाँ, हाँ, कहो, कहो । मैं जानना चाहता हूँ, इस विषय में तुमने क्या अनुभव किया है, तुम्हारे विचार क्या हैं ?’ कमल ने कहा ही था कि राधे बोल उठा—असल बात यह है कमलेश भाई, कि मनुष्य की प्रकृति ही को पहले ज़रा समझ लेने की ज़रूरत है । क्या उसकी प्रकृति है, और क्या अप्रकृति, वास्तव में इसी का समझ लेना आवश्यक है । लोग प्रायः कहा करते हैं, फ़लौं आदमी तो बिलकुल ही बदल गया । लोग उसकी रूप-रेखा, उसके आकार-प्रकार को देखकर ही प्रायः इस तरह की बातें कह डालते हैं । पर परिस्थितियों के चक्र में घूमते और द्विज-भिन्न होते हुए उसके क्षण-क्षण के जीवन को देखकर वे यह नहीं सोचते कि प्रकाश सदा प्रकाश ही रहता है । यह बात दूसरी है कि कोई प्रकाश दिन का हो, कोई निशा का । अब यहाँ प्रश्न यह है कि दिन का प्रकाश तो प्रकाश है और उसे संसार स्वीकार करता है । किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फूटा हुआ है, वह अन्धकार क्यों है ?

तब तत्काल उत्तरंग मानस से कमलेश बोल उठा—वन्दरफुल ! कितनी अच्छी बात तुमने अनायास कह डाली ! वाह !!

विमला ने उसी समय एक बार राधे के उस तेजोमय मुख की ओर दृष्टि-क्षेप किया । थोड़ी देर से उसकी छाती के भीतर भूकम्प-कालीन रत्नाकर की भाँति जो भीम विस्फूर्जन प्रध्वनित हो रहा था, राधे के इस कथन को लेकर और फिर एक बार उसकी ओर देखकर आप से आप वह बिलकुल शिथिल, ध्वस्त हो उठा । जिस व्यक्त अतीत ने आज अभी उसके मन-प्राण तक को बार-बार स्तम्भित, विकल-विकम्पित कर-करके एक अव्यक्त अभियोग से अतिशय, अस्थिर किंवा विमूढ़ कर डाला था, निमेषमात्र के इस वैकल्पिक उपायन से उसके पराभूत चित्त की सारी दुर्बलता बात की बात में निष्प्रभ प्रशान्त हो उठी ।

इसी समय भोजन करके दोनों मित्र उठ खड़े हुए ।

×

×

×

रात के ग्यारह बजे हैं । कमलेश सो रहा है । पास ही विमला भी लेटी हुई करवटें बदल रही है । कुछ स्वप्न उसके मानस-पट पर उतर आये हैं ।

‘तुम्हारी यह आदत अच्छी नहीं है, भैया !’

‘कौन-सी ?’

‘पूछते हो कौन-सी !’

‘जो, जब मालूम नहीं है, तब पूछना भी गुनाह है !’

‘हाँ, गुनाह है । मैं तुमसे भैया जी कहती हूँ ।’

वह चुप रह गया । उसका मुख यकायक डतर गया । कोई बात वह फिर न कह सका । तब वह चलने लगी । कुछ वद्विग्न होकर अपना ही तिरस्कार अपने ऊपर लादकर । किन्तु उसी समय उसने सुना, वह कह रहा है — मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का तुम्हें अब कभी अवसर न मिलेगा, विमला । मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।

वह झौट पड़ी । अपनी मर्यादित गरभीरता से विचलित होकर वह बोली — सचमुच, क्या तुम कानपुर छोड़ दोगे ?

‘छोड़ना ही पड़ेगा विमला ; क्योंकि मनुष्य की प्रकृति बदल नहीं सकती ।’ उत्तर में वह कुछ कह न सकी थी । यद्यपि उन निर्वाक्, निस्पन्द, निष्ठुर क्षणों ने उसके इस जीवन को ही व्यर्थ कर डाला, तो भी उन क्षणों को वह फिर कभी न पा सकी । आज तक न पा सकी ।

किन्तु वह था कितना दृढ़प्रतिज्ञ ! उसने कानपुर छोड़ ही दिया । यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया था । एकमात्र यही आदत थी उसकी कि वह मुझे देखकर पुलकित हो उठता था । उसके उस हास-मुखरित आनन की उद्दीप्त आभा, उसकी उल्लास-तृप्त आँखें, अपने आन्तरिक भाव प्रकट करने का जोभ संवरण न कर सकती थी । मुहल्ले

की बात ठहरी । वह कभी अपनी सखियों के साथ निकलती, कभी मा-
भाभी के साथ । और इन सबके साथ निकलने पर भी वह उसकी ओर
एक बार देखे बिना मानता न था । फलतः एक अदम्य बहिरभिमुखी
लज्जा से वह बिलकुल संकुचित तथा अभिभूत हो उठती थी ।

बस, यही उसका अपराध था—और उससे संलग्न यही उसकी
असुविधा !

और उसके बाद यह आज का दिन है ।

'तुम्हारे गार्हस्थ्य जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें
बधाई देता हूँ ।' और मेरे गार्हस्थ्य जीवन का यह कैसा सफल स्वरूप
है ! किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फूटा हुआ है, वह अन्धकार
क्यों है ? कौन कहता है कि वह अन्धकार है ! क्या अब भी किसी में
इतना साहस है कि वह उसे अन्धकार कह सके ! किन्तु यह बात तो
तुमने अपने आपको देखकर कह डाली है ; क्योंकि तुम एक प्रकार के
अकल्पित स्वप्न हो । किन्तु यह तो एक कविता हुई । और इस विमला
के भीतर जो नारी है, वह तो वैसी उस प्रकार की निरी कविता नहीं
है, उसका एक शरीर है, एक हृत्पिण्ड । कभी उसे छूकर देखते, तो जान
पाते कि बाहर से प्रकाशमयी झलक मारनेवाली इस विमला के भीतर
का अन्धकार अभी तक पूर्ववत् स्थिर है । अपने स्थान से वह टस-से
मस भी नहीं हुआ है । अभी तक उसके भीतर की गर्वित नारी उसी
प्रकार तृप्ति है, जैसी वह कभी पहलने थी । उसके प्रकृत स्वरूप का
सांगोपांग अर्थ किया ही नहीं जा सका—यहाँ तक कि वह अभी तक
मा भी नहीं हो सकी ! और फिर भी तुम उसके गार्हस्थ्य जीवन का
साफल्य देखने चले थे ! ओह ! इस परिवार का अन्तरंग न देखकर
उसके बाह्य स्वरूप पर तुम ऐसे मुग्ध हो उठे कि एक बधाई भी उसे
दे डाली । किन्तु तुम्हारी यह बधाई तो उन्हीं के लिए थी । मेरे साथ
उसका सम्बन्ध क्या ! न, वह बधाई मेरे लिए नहीं है, नहीं है ।

किन्तु ठीक तो है । उन्होंने कह डाला था—सुनती हो विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है ।

लेकिन उनके कहने से भी वह बधाई मेरे लिए नहीं हो सकती । व उनके लिए थी, हों उन्हीं के लिए । तो क्या वास्तव में वे बधाई के पात्र हैं ? क्यों भला ? क्या वे बधाई के पात्र केवल इसलिए हैं कि मेरे जीवन की यह धारा भी उन्हीं के साथ-साथ प्रवाहित हो रही है । तो तुम सोचते हो कि यह विमला अभी तक इसमें समर्थ है कि उसकी संगति का योगमात्र किसी को भी बधाई का पात्र बना सकता है ! उफ़, तुम ऐसा क्यों मानते हो राधे भैया ? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये ? क्या तुम्हें याद नहीं रहा कि तुमने किसी को कुछ कहा था ? कहा था कि मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का अब तुम्हें कभी अवसर न मिलेगा !...तो फिर इतने दिनों के बाद तुमने यह अवसर क्यों दिया ?

भर, भर, भर !

ये आँसुओं के बूँद हैं कि सुधारण्व के मोती !

ओह ! जीवन के ये दस वर्ष योंही बीत गये । युग पलटा, कितने भूकम्प आये । कितनी रिम-रिम रातें, कितनी शारदी निशाएँ, कितने वासन्तिक दोहन आये और गये ; किन्तु राधे की छाया भी कहीं न देख पड़ी । और एक युग के बाद, जान-बूझकर भी नहीं अनायास वे जो इस कुटीर में आ ही पड़े, तो यह विमला, यह मूर्त काजिमा अपने आपको न देखकर दोष देती है उसे, जो दिवाकर की भाँति वरेण्य और मनस्वी है !

तो तुम मुझसे बोले क्यों नहीं ? कुछ विस्मय और कुछ दुलार से ओत-प्रोत होकर तुमने मुझे निकट पाकर, मेरा नाम लेकर पुकारा क्यों नहीं ? तुम्हारी मुद्रा इतनी गम्भीर क्यों बनी रही ? एक बार भी सिर उठा कर तुमने मुझे ध्यान से देखा क्यों नहीं ? हूँ, मुझसे छूटकर जाओगे कहाँ ?

भर, भर, भर !

ये अमृत के बूँद क्रमागत रूप से क्यों आ रहे हैं ! भरने से बूँद तो यों निरन्तर आ सकते हैं ; किन्तु इस प्रकार के अमृत-बूँदों को वह कहाँ से लायेगा ! और उनके निस्त्राव के साथ यह निस्त्रवन कैसा है ! ये रुदन की सिसकियाँ हैं कि निर्भर की उत्ताप उर्मिलाओं का अजस्र मुखरित महोत्सास ।

×

×

×

‘ऐं ! तुम रोती हो विमला ?’

यकायक उठकर झट से विद्युत्-प्रकाश प्रस्फुटितकर कमल विमला के पलंग पर आकर उससे मिश्रित होकर बैठ गया । फिर उसके सिर की कुन्तल-राशि, वेणी और उसके अन्तिम छोर तक अपना वाम हस्त फेरते हुए बोला—रोती क्यों हो विमला ? बतलाओ । मैं जानना चाहता हूँ, क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है ?

अब विमला आँसू पोंछकर, स्थिर होकर, बैठ गई । उसका एक हाथ अब भी कमल के हाथों में था । उसके रुद गम्भीर मुख की अप्रकृत भंगिमा देखकर कमल यकायक स्तब्ध हो उठा और उसी समय विमला बोली—अपराध ?...अपराध की बात पूछते हो ?

‘हाँ ।’

‘तो तुम इस राधे को अन्दर क्यों ले आये ! किससे पूछकर ले आये !’

कमलेश अवाक् हो उठा । तुरन्त तो वह कोई उत्तर न दे सका । किन्तु क्षण-भर के बाद बोला—वह मेरा एक मित्र था, चिरपरिचित मित्र । उसका स्वागत-सत्कार करना मेरे लिए आवश्यक था...किन्तु वह कोई भी हो, उसके सम्बन्ध में इतना सोचने की आवश्यकता ही क्या है ?

‘वह क्यों आया था ?’

‘एक प्रस्ताव लेकर ।’

‘क्या उत्तर दिया ?’

‘उसकी बात मान लेना ही उचित समझा । स्वदेश के पीछे उसने अपना जीवन उतसर्ग कर रखा है । उसे निर्विरोध कौंसिल में जाना चाहिये । उसके पक्ष में मैंने अपने आपको रोक लिया है ।’

‘जी—व—न—उ—त्स—र्ग कर—र—खा है !’—विमला ने अतिशय मन्द स्वर में अटक-अटककर इस तरह कहा कि कमत्र उसकी अपरूप मुद्रा को देखकर चकित-स्तम्भित हो उठा । क्षण-भर रुककर बोला—बात क्या है विमला ? मैं ज़रा साफ़-साफ़ जानना चाहता हूँ ।

‘वह मेरा शत्रु है । मेरी जीवन-धारा को उसने व्यर्थ ही में विकृत करने की केषा की है । मुहल्ले के नाते से मैं उसकी बहन होती हूँ । फिर भी जान-बूझकर उसने मेरी अवहेलना की । मैं इसे कैसे सहन कर सकती हूँ ?’

X

X

X

‘अरी पगली—यह मेरी ही भूल है ! लेकिन तुम जानती हो विमला, मैं कुछ आज का मुलककड़ नहीं हूँ... खैर, मुझे इसका दुःख है । चलते-चलाते वह अपनी सोने की घड़ी तुम्हें भेंट-स्वरूप दे गया है । उसने कहा भी था—यह घड़ी मेरी बहन को दे देना । तुम उसे ले लो अभी । वह मेरे कोट के भीतरी जेब में पड़ी है ।’

और विमला सोचती है—यह उपहार है कि मृत्यु !

पथ में से

हुमेशा के झंझट से छूटने का भाव दिखाते हुए मैंने कह दिया—
अच्छा चलो ; परन्तु आज के ही लिए । फिर कभी नहीं ।

रामदेव जोर से हँस पड़ा, बोला— फिर कभी ले चलने की मुझे
ज़रूरत न पड़ेगी । फिर तो तुम्हीं मुझे घसीटकर ले चला करोगे ।

अपनी झोंप मिटाने के लिए मैंने हँसकर उसके कंधे पर अपने
दोनों हाथ दे मारे । कहा— तुम बड़े दुष्ट हो !

रामदेव को 'दुष्ट' कहना ही उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा थी । अपनी

दृष्टता के गौरव का अनुभव करके उसका मुँह आनन्द से और भी दमक उठा। मुझे चलने के लिए बिलकुल तैयार देखकर मुँह पर विस्मय का भाव लाते हुए बोला—भले आदमी, आज भी यह टाट ही पहने रहोगे ? घण्टे भर के लिए हमें छोड़ दोगे, तो जन्म-भर का पुण्य चला न जायगा !

रामदेव 'टाट' कहकर मेरे खहर की हँसी उड़ाया करता था। असहयोग के दिनों की उत्तेजना के वशीभूत होकर मैंने खहर पहनना शुरू किया था। बाद में मालूम हुआ कि यह वेश धारण करना जितना आसान है, इसे निभा ले जाना उतना ही कठिन है ; परन्तु केवल इसी के कारण जनता से जो श्रद्धा प्राप्त थी, वह आसानी से नहीं छोड़ी जा सकती थी। खहर मेरे लिए वह चटपटा भोजन हो गया था, जो अरनी तीक्ष्णता के कारण आँखों से आँसू जाता है, फिर भी जीभ से नहीं छोड़ा जाता। मैंने रामदेव की बात का कोई जवाब न दिया। चुरचाप उसके साथ हो लिया। न-जाने क्या सोचकर उसने भी कुछ नहीं कहा।

मेरे मन में विचारों की एक हलचल शुरू हो गई। जिस कुरिस्त पथ पर आज मैं जा रहा था, वह मेरे लिए बिलकुल नया था। अपने रखतन की सारी जिम्मेदारी रामदेव के सिर डालकर मैं निश्चिन्त होने की चेष्टा कर रहा था। विचार-प्रवाह के साथ-साथ मेरी चाल भी बढ़ती जा रही थी।

बीच में ही मेरी विचार-शृङ्खला तोड़कर रामदेव बोला उठा—अरे, अभी से ऐसा नशा चढ़ गया कि रास्ता भी भुल्ला दिया ! उसकी बात सुनकर मैंने चौककर देखा—जिस गली में मुझ जाना चाहिये था, वैसे छोड़कर मैं सीधा भागे बढ़ रहा हूँ। लजित होकर मैं उसके पीछे हो गया।

यह वह रात थी, जो पूर्ण कलाधर को पूरा का पूरा निगलकर भी प्रकाश के लिए राक्षसी धुंधा रखती है। म्युनिसिपैलिटी की दरिद्र

लाकटेने अपने ऊपर अन्धकार का 'ग्लोब' चढ़ाकर टिमटिमा रही थीं । ऊपर नक्षत्रों ने भी बादलों का आवरण चढ़ा रखा था । यह कुछ बुरा न था ; वरन् मेरी लजा ठकने के लिए यही सबसे बड़ा आधार था ।

अपनी दुर्बलता दूर करने के लिए मैंने इधर उधर से खोंच-खोंचकर शक्ति इकट्ठा की । समय के विचार से उसे दुर्बलता ही कहना चाहिये—और क्या । कृष्ण ने अर्जुन को जिस प्रकार उद्बोधित किया था, कुछ-कुछ उसी प्रकार मैं भी अपने को सशक्त करने की चेष्टा कर रहा था ।

मैं आगे बढ़ता चला । सहसा मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे पीछे कोई लगा हुआ है । देखने के लिए मैंने पीछे की ओर गर्दन मोड़ी । गली के उस घोर अन्धकार में देखने को क्या था ? फिर भी न जाने क्यों मुझे अनुभव हुआ कि मेरी स्वर्गीया माता अन्धकार के परदे में छिपी-छिपी मेरे पीछे आ रही हैं । मेरा सारा शरीर कण्टकित हो उठा ।

रामदेव ने फिर चुटकी ली । बोला—भाई मुझसे छिपाकर चुपचाप मन के लड्डू क्यों उड़ा रहे हो ! सच्चे लड्डू अभी तो सामने आये जाते हैं !

अपनी चिन्ता दूर करने के लिए मैं उससे बातें करने लगा । मैं स्वयं नहीं सोच सकता था कि क्या कहना चाहिये ; अतएव यदि उन असम्बद्ध बातों को यहाँ न लिखूँ, तो आशा है, साहित्य की बहुत बड़ी हानि न हो जायगी ।

अब हम लोग इस गली में आ पहुँचे, जहाँ हमें जाना था—जहाँ नित्यप्रति यौवन और श्री का विसर्जन होता रहता है । नीचे के खण्ड की दूकानें प्रातःकालीन नक्षत्रों के जैसी हो रही थीं ; परन्तु ऊपर की दूकानों में अभी जाग्रति का श्रीगणेश ही हुआ था । अच्छा श्रीगणेश हुआ था । एक जगह से नूपरों का मंकार आ रही थी, तो दूसरी जगह से मादक संगीत-लहरी । एक ओर से सुन्दरी का मधुर हास्यालाप सुन पड़ता था, तो दूसरी ओर से किसी मद्यप का असम्बद्ध कंठ-स्वर । मैंने

समझा कि इस पाप बीथिका में अकेला मैं ही नहीं हूँ । मेरा साथ देने के लिए यहाँ एक से एक बढ़कर मिल सकते हैं ।

रामदेव रुककर खड़ा हो गया । बोला—अब हम यथास्थान आ गये । देखो, इन्हीं सीढ़ियों से हम ऊपर के स्वर्ग में पहुँचेंगे ; परन्तु ज़रा ठहरो । पास की इस दूकान से पान ले लूँ । और हाँ, फूल भी ।

शुभस्थान में बिना 'पत्र पुष्प' के जाना ठीक भी नहीं है ।

पाजी की कुटिल हँसी देखकर मेरे हाड़ जल बठे । वह आगे बढ़ गया । मैं वहीं खड़ा रहा ।

दूकान सामने थोड़ी ही दूर थी । दूकानदार की बात मेरे कान में स्पष्ट पहुँची, यद्यपि वह भीमे स्वर में ही बोल रहा था—ये बाबू नये जान पड़ते हैं । ज़्यादा तो नहीं पी गये ? वहाँ क्यों रुक गये, यहीं बुला लो ।

दूकानदार ने ग़लत नहीं कहा था । मेरे पास दर्पण न होने पर भी मैं अपने मुँह पर स्पष्ट देख रहा था, वह भाव, जो मद्यपों का ही अपना हो सकता है । यदि मैंने मद्य-पान न किया होता, किसी तरह का भी क्यों न हो वह — तो यहाँ आज आता ही क्यों ? उधर से दृष्टि हटाकर मैंने सीढ़ियों की ओर देखा । सोचने लगा—ये सीढ़ियाँ मुझे ऊपर ले जायँगी या किसी अतल गर्त में, जहाँ से कभी ऊपर उठ ही न सकूँगा ? ऊपर के कमरे में समुज्ज्वल प्रकाश उद्दीप्त हो रहा था । उसे भी देखा । इस प्रकाश में आज मेरे लिए कहीं का अन्धकार छिपा हुआ है, यह मैं निश्चय नहीं कर सका ।

मेरा माथा उत्तप्त हो उठा । मैं टोपी के भीतर हाथ डालकर धीरे-धीरे बालों पर फेरने लगा । एकाएक सनसनाता हुआ हवा का एक झोंका आया । मेरी टोपी उड़कर मेरे पैरों के पास आ गिरी ।

शिव ! शिव ! यह क्या हो गया ? मेरी यह टोपी वैसी नहीं है, जैसी सब कोई पहनते हैं । मेरी टोपी का एक इतिहास है । एक श्रम में कितनी ही बातें मेरे मस्तक में घूम गईं । जब शुरू-शुरू में खादी का

मुझे शोक हुआ था, उस समय मेरी मा जीविन थीं। एक दिन जाकर मैंने उसने कहा—मा, मैं यह चरखा लाया हूँ। जिस तरह तुम्हारे हाथ के भोजन से मेरी भूख शान्त होती है, उसी तरह तुम्हारे हाथ के वस्त्र से ही मेरे शरीर को सुख मिलेगा ! तुम सूत कात दो। मैं उसी का कपड़ा पहनूँगा। मा के कते सूत का एक ही थान बन पाया कि वे लौकिक माया-ममता छोड़कर अनन्तधाम को चली गईं। उस कपड़े का मूल्य आँकना मेरे लिए असम्भव था। बहुत सोच-विचारकर मैंने उसकी टोपियाँ ही टोपियाँ बनवा डालीं। निश्चय किया था—माता का प्रसाद हमेशा मस्तक पर धारण किये रहूँगा। इस वस्त्र के प्रत्येक तार में मैं माता के कर-स्पर्श का अनुभव किया करता था। हाय ! आज मैं ऐसा कुत्सित कृत्य करने पर उतारूँ हुआ हूँ कि माता का प्रसाद मेरे मस्तक से खिसककर पैरों पर लोटने लगा है। आज मुझसे जो अपराध हो गया है, उसका परिहार कहाँ है, मैं इस बात का निश्चय नहीं कर सका। हाय ! मस्तक से ऊँचा स्थान कहाँ पाऊँ, जहाँ मा के उस प्रसाद को फिर से स्थापित करके, उसके पैरों पर गिरने की ग्लानि दूर कर सकूँ।

रामदेव हाथ में पान और माला लिये लौटकर बोला—अब चलो।

मैंने नीचे से टोपी उठा ली थी। भाड़कर उसे बार-बार मस्तक पर लगा रहा था। रामदेव को देखते ही भभक उठा—बदमाश ! यहाँ मुझे कहाँ ले आया ! अच्छा देखूँगा !

रामदेव के मुँह पर विस्मय की एक झलक देखता हुआ मैं पागल की तरह भाग खड़ा हुआ। उस गली को पार करके बहुत दूर मैंने साँस ली। देखा, अन्धकार और भी घना हो गया है। आकाश में एक भी नक्षत्र नहीं दीख पड़ता था। परन्तु मैंने समझा—मैं अनन्त प्रकाश के बीच में खड़ा हुआ हूँ।

स्वप्न

‘महात्माजी, सुरीला की जीवन-नौका की पतवार अब मैं आपके हाथों में देता हूँ। आपकी कृपा-दृष्टि के सिवा संसार में इस दुखिया के लिए दूसरा शान्ति का साधन नहीं है।’

‘अपनी एकमात्र कन्या को अपने समीप न रखकर आश्रम में छोड़ने के लिए विकल क्यों हो ?’

‘महात्माजी, कभी आप मेरे मित्र थे, मेरी जिन्दगी आपसे बिपी नहीं है। आप महान आत्मा हो; आपने अपने जीवन में घोर परिवर्तन

कर लिया है—आज तपस्वी हो । किन्तु मैं—मैं जो आज से बीस वर्ष पहले था, बिल्कुल वही हूँ । केवल इतना अन्तर हुआ है कि जिस दिन से सुरीला विधवा हुई है, मुझे अपने दुर्व्यसन नरकाग्नि के समान जला रहे हैं ।

‘महात्माजी, मैं महानीच हूँ, पापी हूँ दुराचारी हूँ, व्यभिचारी हूँ ; किन्तु मेरी पुत्री सुरीला देवी है, लक्ष्मी है, पवित्रता की प्रतिमा है । गुरुदेव, उस पर दया करो । मुझे भय है कि मुझ पामर के दुर्व्यसनों का प्रभाव कहीं उसके पुनीत विचारों को दूषित न कर दे । अब तक वह पूर्णतः संसार के संसर्ग में नहीं आई है । वह कवि है, और किसी और लोक में विचरण करती रहती है ; किन्तु नवयौवन का विकास उसे इस पापी संसार से परिचित कराके रहेगा । देव, उसकी पवित्रता की रक्षा करो । वह विधवा है । मैं उसका पतित पिता उसकी आत्मोन्नति का इच्छुक हूँ । मेरी अन्तिम अभिलाषा है, मेरी देवी समान पुत्री देवी ही बनकर रहे ।’

महात्मा ने सुरीला को आश्रम में रखना स्वीकार कर लिया ।

×

×

×

महात्मा कभी बैरिस्टर थे । उनको खी लक्ष्मी ने अन्तिम समय में कहा था—‘दूसरा विवाह न करना, वरना मेरे बच्चों की दुर्गति हो जायगी । दूसरी माँ प्यार के बदले इनसे...’

क्रूर काल ने लक्ष्मी को अपना वाक्य पूरा नहीं करने दिया ; किन्तु यह अधूरा वाक्य ही बैरिस्टर दीक्षित के हृदय पर अमर छाप डाल गया । लक्ष्मी की उन्मीलित आँखें जाने कैसी व्यथा छोड़ गई थीं, वे टूटते हुए शब्द विनय की एसी अनन्त सीमा का दिग्दर्शन करा गये थे कि बैरिस्टर दीक्षित ने अनेक विपत्तियों का सामना किया, किन्तु दूसरा विवाह नहीं किया । उस दिन से उनके कार्यक्रम में बच्चों का लाजन-पाजन और मृत लक्ष्मी के चित्र का पूजन सम्मिलित हो गया ।

स्त्री के देहावसान के समय बैरिस्टर दीक्षित नवयुवक ही थे । नवीन सभ्यता, पश्चिमीय शिक्षा और फैशनेबिल सोसाइटी का रंग उनमें भी पूर्ण मात्रा में व्याप्त था । और शायद उनके वे ही पूर्व संस्कार चेष्टा करने पर भी उनके मन को चलायमान करते थे । हमेशा उनके हृदय में देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता । कितनी ही बार आसुरी वृत्तियों ने अपनी विजय-घोषणा करने का निश्चय कर लिया ; लेकिन लक्ष्मी की उन आँखों और शब्दों ने सदा उनकी रक्षा की ।

समय के आराधना-हेतु स्त्री-जाति से सर्वथा दूर रहने का उन्होंने निश्चय किया । उनके कई मित्र ऐसे थे, जिनकी स्त्रियों से भी उनकी काफी घनिष्टता थी । लक्ष्मी की मृत्यु के बाद उन लोगों ने बैरिस्टर दीक्षित को पूर्ण सहानुभूति के साथ बच्चों के लाज्जन-पालन में सहायता भी दी ; किन्तु बैरिस्टर दीक्षित ने उन लोगों की ज़रा भी परवाह न करके उनसे मिलना-जुलना तक बन्द कर दिया । वे अपने चारों ओर के वायुमंडल में अब स्त्री के नाम को भी स्थान देना नहीं चाहते थे ।

बच्चों को पालनेवाली पुरानी आया से भी कह दिया गया कि अब घर जाओ ; तुम्हारी पेंशन प्रतिमास मनिआर्डर द्वारा पहुँचती रहेगी । इस मामले में बैरिस्टर दीक्षित ने न आया के आँसुओं की चिन्ता की, न बच्चों के मानसिक क्लेश की । हाँ, बच्चों को स्वतन्त्रता थी कि जब इच्छा हो, आया के घर जाकर उससे मिल आया करें । उनके अन्य कर्मचारियों में जो सपत्नीक थे, उनके वेतन में वृद्धि के साथ उन्हें आज्ञा हुई कि अलग घर लेकर अपने परिवार को रखें ।

यहाँ तक कि बैरिस्टर साहब ने किसी स्त्री-मुवफिक़ का केस भी लेना छोड़ दिया । अपनी कन्या सुनीता से बोर्डिंग हाउस में मिलने तक न जाते, क्योंकि मुख्य अध्यापिका से मुलाकात किये बिना लड़कियों से मिल सकना बोर्डिंग-हाउस के नियमानुसार सम्भव नहीं था ।

छुट्टियों में सुनीता का बड़ा भाई उसे खिचा खाता, तभी पिता पुत्री एक-दूसरे को देख सकते थे ।

इस प्रकार अनेक कठिन नियमों के आचरण में वे अपने को क्षिपा कर रखने लगे ।

X X X

बैरिस्टर दोक्षित अपने साथ इतनी सख्ती करने पर भी मानसिक संयम न रख पाते । हर समय मानसिक भावनाओं के साथ उनको घोर युद्ध करना पड़ता । दिन-भर किसी प्रकार विभिन्न कार्यों में चित्त को उलझाये रखते, रात में गीता-पाठ के साथ निद्राशैली का आह्वान करते, फिर भी स्वप्न में अतीत काल के हास-विज्ञास के दृश्य अपनी छाया डाल ही जाते ।

श्यामाचरण वकील के यहाँ पार्टी है। कैलाशबिहारी आगा की स्त्री रागिणी आज कैसी सज-धजकर आई है। रागिणी के रूर की बराबरी करनेवाली फैशनेबिल स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। धानी साड़ी मुख पर कैसी खिल रही है।...ऐसे स्वप्न उनके चित्त को उद्धिग्न कर जाते।

बैरिस्टर साहब आफिस में क़ानून का अध्ययन कर रहे हैं, और बाहर बरायडे में कोई नया मुक्किल्ल मुहर्रिं से गुप्तगू करता है, तो बैरिस्टर साहब की चितेरी कल्पना सब कुछ भूलाकर खी का चित्र उनके सम्मुख खींचती । कोई सफेद साड़ी पहने विधवा होगी । पति की सम्पत्ति पर किमी ने अधिकार कर लिया होगा और अब रोटी देना भी अस्वीकार करता होगा । जाचार मुकर्रमे की बात सोचकर भाई है । ध्वनि से भी स्त्री ही प्रतीत होती है ; संकोच से धीरे-धीरे बोल रही है ।

मुहर्रिर के द्वारा मशविरा तो दे दूँगा, किन्तु केस अपने हाथ में नहीं लूँगा। उसी समय मुहर्रिर कमरे में आता, बैरिस्टर साहब की निमन्त्रता में बाधा पड़ती; वे कुछ कश्चित हृदय से कल्पनानुसार सुनने

की प्रतीक्षा करते । मुहर्रिर कहता—साहब, बदरमीबाब नामक एक मुवक्किल आया है ।

लज्जा और ग्लानि से चित्त चञ्चल हो उठता । वे सोचते—यह क्या है ? पहले तो मेरी मानसिक स्थिति ऐसी दुर्बल नहीं थी । कुप्रवृत्तियों के पराजित करने के साधन उल्टे मुझे ही पराजित कर रहे हैं और मानसिक उन्नति के मार्ग से विमुक्त करके पतन के मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं । क्या उपाय करूँ भगवान् !

×

×

×

पुत्र पुत्रियों के कर्तव्य से निवृत्त होकर बैरिस्टर दीक्षित ने संन्यास ले लिया । हिमालय की पहाड़ियों में भ्रमण करते हुए एक पहुँचे हुए महारमा से उनका साक्षात् हुआ । उसी दिन वे उनके शिष्य हो गये ।

महारमा वास्तव में एक दिव्य पुरुष थे । संसार से विरक्त होकर वर्षों उन्होंने कठिन तपस्या की थी । बहुत दिनों तक मानव-समाज से परे भयानक जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में विचरण करते रहे थे ; किन्तु अपनी साधना को सफलीभूत करके अब फिर मानव-समाज के उपकार की कामना से इस ओर आ गये थे । योगिराज की इच्छा एक आश्रम बनाने की थी । जिसमें भटकते हुए प्राणियों को शान्ति और अध्यात्मवाद का अध्ययन करने का अवसर मिले ; साथ ही निर्धनों के लिए वे एक चिकित्सालय भी खोलना चाहते थे । उन्हें अनेक संजीवनी जड़ी-बूटियों का ज्ञान था ।

बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग देकर योगिराज की इच्छा पूरी की और स्वयं भी उनके साथ आश्रम में रहकर सेवा और उपासना में तन्मय हो गये ।

योगिराज की कृपादृष्टि से उन्हें पूर्ण शान्ति भी प्राप्त हुई, और थोड़े ही दिनों में कठिन अभ्यास और तपस्या के द्वारा वे एक महान् तपस्वी बन गये । योगिराज के अनेक शिष्यों में बैरिस्टर दीक्षित का

स्थान सर्वप्रथम था। चारों ओर उनकी ख्याति फैल रही थी। उन पर भी लोगों की श्रद्धा-भक्ति उनके गुरु से कम न थी।

योगिराज के शरीर क्षोभ देने पर आश्रम ने गुरुदेव के पद के योग्य बैरिस्टर दीक्षित को ही समझा और उसी दिन से उन्हें महारामा की पदवी भी मिल गई। अब वे बैरिस्टर दीक्षित नहीं, एक प्रसिद्ध महारामा थे।

X

X

X

सुरीला को आश्रम की सीढ़ियों पर बिठाकर उसके पिता गुरुदेव के दर्शन करने गये थे ! सुरीला सुदूर तक गंगा की उज्ज्वल जलधारा का अबलोकन करती हुई अपने विचारों में निमग्न थी— पिता मुझे संन्यास लिवाना चाहते हैं ; कहते हैं, इन महारामा की कृपा से मुझे कृष्ण भगवान् के दर्शन हो जायेंगे, मुझे शान्ति मिलेगी। जिन नटनागर के स्वप्न मैं अपनी कविताओं में अंकित करती रहती हूँ, उनके दर्शन पाने से बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है, किन्तु पिता से बिलग होना भी तो आसान नहीं है। और अपने अन्दर अशान्ति तो मुझे कुछ प्रतीत होती नहीं। लोग मुझे दुखिया समझकर मुझ पर करुणा का भाव दिखावाते हैं, मेरे दुःख पर आँसू बहाते हैं ; पर मैं तो बहुत सुखी हूँ। पिता मुझे कितना प्यार करते हैं !

मेरे मा नहीं है, भाई-बहन भी नहीं हैं, मैं अकेली हूँ ; लेकिन यह अकेलापन अब तक तो कुछ अखरता नहीं है। कितने तो काम हैं, मुझे यह सोचने की फुरत कब मिलती है कि मैं अकेली हूँ।

पति के मैंने दर्शन ही नहीं किये। कभी कभी मन दुखी अवश्य होने लगता है। मेरा विवाह पिता ने इतनी छोटी उम्र में क्यों कर दिया विलायत जाते समय पतिदेव मुझसे मिलने आये थे ; पर लज्जा-वश मैं उनके समीप गई ही नहीं। वे नाराज होकर प्रातः ही चले गये, और विदेश ही में उनकी मृत्यु हो गई। यह ज्ञात अवश्य हृदय को ठेस पहुँचाता है।

पिता को छोड़कर मैं यहाँ कैसे रहूँगी ! यह आश्रम तो मेरे घर जैसा भी नहीं है । गंगा का किनारा होने से सुहावना अवश्य जान पड़ता है । मुझे यहाँ फुलवारी लगाने को कहाँ मिलेगी ? कविताएँ भी शायद ही लिख सकूँ । महारमा की आज्ञा पर ही तो चलना होगा न ।

और फिर पिताजी को कितना कष्ट होगा ! अँधियाले ही चाय पीते हैं । कोई नौकर भी इतना सवेरे न उठ सकेगा । और मेरी मैना मुझे न देखकर ब्याकुल हो जायगी । मदनगौर बिना मेरे खिल्लाये आधा चारा भी नहीं खायगा ।

कहीं नौकरों ने संध्या समय कबूतरों को बन्द नहीं किया तो उन्हें बिल्ली खा जायगी । मेरे पीछे मेरी फुलवारी डजड़ जायगी । मेरी सारी चिड़ियाँ मर जायँगी । मिसरानी के बनाये खाने से पिताजी का पेट भी नहीं भरेगा । वे और भी दुबले हो जायँगे, ख़ाँसी भी बढ़ जायगी ।

सम्भव है, हर समय शराब भी पीते रहें । अभी तो मैं बहुत देर तक उन्हें बातों में लगा लेती हूँ ; ताश खेलती हूँ, गाना सुनाती हूँ और संध्या को चिड़ियाखाने की सैर कराती हूँ । फिर संध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे । परमात्मा, क्या होगा ? मैं तो चुपके से शराब में पानी मिला देती हूँ, मेरे पीछे ख़ालिस शराब की पूरी बोतल पी गये, तो फिर मुँह से खून गिरने लगेगा । कुछ भी हो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी । मेरे पिता शराब पीते हैं, तो क्या हुआ ? उनके बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है ? कौन मुझे प्यार करेगा । मैं यहाँ किसी प्रकार भी नहीं रहूँगी ; किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ, वे नाराज़ हो जायँगे दुखी होंगे । सोचते-सोचते सुरीला के सुन्दर नेत्रों से बड़े बड़े मोती-जैसे आँसू टपकने लगे ।

महात्मा का शिष्य शेखर स्नान करके आ रहा था । दूर से सुरीला उसे स्वेत संगमरमर की प्रतिमा-सी जान पड़ी । सीढ़ी पर वह ठिठक

गया—कोई दुखिया है, रो रही है। उसने मीठी बाणी में पूछा—देवी, रोती क्यों हो ? क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?

सुरीक्षा पुरुषों के संसर्ग में नहीं रही थी ; लेकिन प्रकृति से ही वह निर्भीक थी। लज्जा के वातावरण में वह पड़ी ही न थी। उसने बालकों की भाँति आँसू पोंछते हुए पूछा—तुम महात्मा के पुत्र हो ?

‘मैं महात्माजी का शिष्य हूँ। वे मुझ पर पुत्र की भाँति ही स्नेह करते हैं।’

‘तो तुम कुछ न कर सकोगे ; इसी आश्रम के हो न ?’

‘आश्रमवासी होने से क्या हुआ ! कुछ कहो भी तो। सम्भव है मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ। हम लोगों का ध्येय ही तो परोपकार है।’

सुरीक्षा ने क्षण-भर पहले सोची हुई सारी बातें शेखर को सुना दी, और बोली—क्या अब तुम मेरे पिता से सिफारिश कर सकोगे ? यों तो मेरे पिता मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं ; मगर उनका विचार जम गया है कि इस आश्रम में रहने से मेरा कल्याण होगा।

शेखर ने अत्यन्त मधुर शब्दों में सुरीक्षा के पिता के विचारों का समर्थन किया और अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए उसने कहा—इसमें क्या दर्ज है ? पिता के आज्ञानुसार कुछ दिन यहाँ रह देखो। यदि मन न लगे, तो चले जाना। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन थोड़े ही है। तुम्हारी स्वतन्त्रता में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अपने इच्छानुसार कविता भी कर सकोगी, फुलवारी में विचरण भी कर सकोगी। यहाँ शिक्षा आदि के अनेक साधन हैं। चलो, तुम्हें यहाँ का पुस्तकालय और चित्रशाला दिखा लाऊँ। यहाँ तुम चित्रकला, चिकित्सा, संगीत-कला आदि का भी अध्ययन कर सकती हो।

सुरीक्षा को यह जानकर बहुत सान्त्वना मिली कि शेखर भी कवि है। यहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दों में जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीक्षा आश्रम में रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र-शीघ्र आने का वादा करके चले गये ।

X

X

X

सुरीजा और शेखर में मित्रता हो गई । आश्रम में स्त्री-पुरुषों के परस्पर मिलने-जुलने के लिए कोई ख़ास नियम नहीं था । सबको पूर्ण स्वतन्त्रता थी । दोनों आश्रम के कार्य, पूजा-उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल-नादिनी गंगा के तट पर बैठकर कविता लिखते, कभी वार्तालाप करते और कभी अध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद-विवाद करते । दोनों के विचारों में किसी प्रकार की भी अपवित्रता नहीं थी । वे यथाशक्ति गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते । गुरु के उपदेशानुसार ही अध्ययन, उपासना तथा अभ्यास करते ।

किन्तु गुरु को यह मैत्री खटकती । एक नवयुवक और नवयुवती का इस प्रकार हर समय का साथ, एक का दूसरे के प्रति इतना अनुराग, उचित नहीं है । संयम में विघ्न पड़ सकता है । शेखर अभी अभ्यास ही कर रहा है, तपस्वी नहीं बन पाया है, और सुरीजा को तो आश्रम में प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं । गुरुदेव ने अपने ये विचार किसी पर प्रकट तो नहीं किये ; पर इन दोनों पर कड़ी दृष्टि रखना प्रारम्भ कर दिया ।

उन्होंने शेखर से कहा—पुत्र, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ । भगवान् तुम पर शीघ्र प्रसन्न होंगे । अब वह समय आ गया है कि तुम कुछ दिनों तक एकान्तवास में तपस्या करो । एक सप्ताह बाद तुम्हें एक पहाड़ की कन्दरा में जाना होगा ।

शेखर ने मस्तक नत करके गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की । गुरु ने सुरीजा का स्थान नीचे से बदलकर छत पर अपने कमरे के समीप एक स्थान दे दिया । सुरीजा के मन में शंका हुई—क्या गुरु मेरे ऊपर सन्देह करते हैं ?—किन्तु उसने स्वयं ही अपने विचार की निन्दा की और गुरु की श्रद्धा-भक्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया ।

वस दिन रजनी दुग्ध-स्नान कर रही थी। उसके शरीर से दुग्ध-धारा में बहकर सारी प्रकृति को श्वेत बना दिया था। उसी श्वेत वातावरण में हरी घास को सुकोमल शय्या पर बैठे सुरीला और शेखर वार्ता-लाप कर रहे थे। शेखर ने कहा—सुरीला, गुरुदेव की आज्ञा से अब मैं एक मास के लिए एकान्तवास करने जाऊँगा।

सुरीला पर वज्रपात हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो हृदय की धड़कन बन्द हुई जाती है। वेदना उसके हृदय की मसलने लगी। वह भयभीत हिरणी की नाई छलकते आँसुओं से शेखर का मुँह निहारती रह गई।

सुरीला की यह दशा देखकर शेखर का मन भी जाने कैसा होने लगा; किन्तु उन्होंने हृदय को दृढ़ करके कहा—घबराती क्यों हो? शान्ति से चित्त को एकाग्र करके रहो। गुरु के उपदेशों पर मनन करना, तुम्हारा चित्त सावधान हो जायगा।

सुरीला ने कहा—शेखर, तुम चले जाओगे, तो मैं किसी प्रकार भी यहाँ न रह सकूँगी। मुझे पिता के यहाँ पहुँचा दो।

‘नहीं, सुरीला, इतने दिनों के अभ्यास को इस प्रकार न तोड़ो। मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे अब तुम्हें अधिक समय दें। गुरु के उपदेशों से तुम्हें शान्ति मिलेगी।’

घबराकर सुरीला ने कहा—नहीं, शेखर ऐसा न करना; बल्कि गुरु से कहो, मुझे भी एकान्तवास की आज्ञा दें।

‘ऐसा तो नहीं हो सकेगा, सुरीला! गुरुदेव तुम्हें एकान्तवास में जाने की आज्ञा नहीं देंगे। अभी तुम उस कठिन तपस्या में सफल न हो सकोगी।’

‘शेखर, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे क्षमा करना, शेखर, गुरु से मुझे एक प्रकार का भय लगता है। उनसे अधिक मुझे तुम पर...’

बीच ही में बात काटकर शेखर ने ताड़ना के शब्दों में कहा—

कैसी बातें करती हो, सुरीला ! गुरुदेव पर भक्ति करो ।

काँपते हुए स्वर से सुरीला ने कहा—शेखर, मैंने अनेक बार देखा है, गुरु छिपकर हम दोनों की बातें सुनते हैं ।

‘तो दोष क्या है ? हम लोगों पर दृष्टि रखना गुरु का कर्तव्य है ।’

सिसकते हुए सुरीला बोली—इतना ही नहीं, शेखर, रात्रि में मुझे कई बार शबहा हुआ, किवाड़ की दरज़ में से कोई मेरे कमरे में भौंकता है । तुमने जो अपना चित्र बनाकर मुझे दिया था, वह मेरे कमरे से कोई चुराकर ले गया । मुझे यह काम गुरु का ही जान पड़ता है । मैं यहाँ नहीं रहूँगी, या फिर तुम कुछ दिनों बाद जाना ।

सुरीला सिसक-सिसककर रोने लगी । क्षण भर मौन रहने के बाद उसने शेखर से कहा—शेखर, मेरा मन तुमसे भय नहीं खाता है ।

इस सरलता पर शेखर हँस दिया । और इस समय इस प्रसंग को सुनाने के लिए उसने कहा—आओ, कुछ देर रामायण का पाठ करें ।

×

×

×

सुरीला रामायण गाने लगी । शेखर आधा जेटा हुआ सुनने लगा । गुप्तवाटिका का मनोरम प्रसंग चल रहा था । दोनों तुलसीदास के भक्तिरस का स्वाद ले रहे थे, बिलकुल रामायण में तन्मय थे ।

और गुरु ? गुरु छत की खिड़की पर आधी रात में दोनों के बीच का भेद लेने बैठे थे । ज्ञात अवस्था में ही गुरु को स्वप्न-सा भान हुआ—यह सुरीला कितनी सुन्दर है, मानो सौन्दर्य स्वयं देवी रूप में प्रकट हुआ है । रागिणी का रूप इसकी छाया के बराबर भी न था ।

गुरु चौंक पड़े । आज वर्षों बाद अतीत काल की स्मृति क्यों हिलोरें लेने लगीं ? ‘हरि ओ३म्’ उच्चारण करके गुरु ने आकाश पर हँसते हुए चन्द्रमा को देखा और फिर क्षितिज पर बैठे हुई सुरीला पर दृष्टि डाली । उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो चन्द्रमा का कुछ भाग टूटकर सुरीला बन गया है । उन्हें प्रतीत होने लगा कि भगवान् ने

प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अंश ही नहीं, रामायण की सीता भी है, विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दर्यवती रति भी है। गुरु बेसुच होकर, भक्तिसागर में डूबकर, राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनान्मृत का पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था में कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान ही न सके। कुङ्कुट ने मदमाती बाँग से ऊषा के आगमन की सूचना दी, तो शेषर ने कहा—सुरीला, उठो, आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगों की पारी है। मैं पानी लाता हूँ; तुम चलकर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।

गुरु खिड़की पर सर रखे निद्रा में निमग्न थे। यह समय तो ठनका वायु-सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिये गुरु के जागने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी रही। गुरु मनोरञ्जक स्वप्न देख रहे थे—वृन्दावन विजय वन में चन्द्रदेव पूर्ण कलाओं से शोभा-यमान है। मनोमुग्धकारी रजचन्द्रिका विपिन को, सौरभ दान कर रही है, और वही विमल चाँदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करनेवाले भगवान् कृष्ण दाहने कर में मुरलिका लिये नृत्य कर रहे हैं, और उनके बाएँ पार्श्व में प्रियतमा राधिका शोभा पा रही हैं।

अनेक देवताओं के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण ने मुरलिका ऊपर उठाकर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति में डूबकर गुरु विमान से कूद पड़े और भगवान् ने उन्हें अपने में लीन कर लिया। अब भगवान् कृष्ण और गुरु जुड़ा नहीं थे।

फिर एक बार राधिका के मुख पर दृष्टि डालकर मुरलीमनोहर ने कहा—प्रिये, संसार में तुम सुरीला थीं और मैं महात्मा था। अभी मृत्युलोक में फिर चलकर प्राणियों का उद्धार करना है।

इतना कहकर भगवान् पूर्ण गति से नृत्य करने लगे । रासखीजा समाप्त कर वे राधिका को लेकर फिर संसार में चले आये । अनी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नहीं हुआ था ।

राधिका बोली—प्राणेश, क्या मुझे अभी और विजग रहना होगा ? इस बार की जुराई तो सीता-वनवास से भी अधिक हो गई, देव !

कृष्ण ने राधिका को आज्ञागन कर लिया और बोले—नहीं प्रिये, अब हम-तुम साथ रहकर ही पृथ्वी का उद्धार करेंगे ।

जागकर भी गुरु की चेतना नहीं हुई । उन्मत्त की भाँति सुरीजा का हाथ पकड़कर बोले—राधिका, प्रिये...

सुरीजा गुरु का हाथ झटककर चीखती हुई भागी—मुझे बचाओ, शेखर !

शेखर जल की बाल्टी लेकर सीढ़ियों पार कर चुका था । यह दृश्य देखकर अप्रतिभ-सा रह गया । उसी समय सुरीजा बिजली की भाँति टूटकर उसके पैरों के समीप गिर पड़ी । बाल्टी की कोर माथे में झुक गई और खून की धारा बह निकली ।

बेसुध सी सुरीजा को गोद में लेकर शेखर आश्रम से बाहर हो गया । सारे आश्रम में कोलाहल मच गया । घटना का पता लगाने के लिए आश्रमवासी गुरु के समीप गये ; लेकिन दरवाजे बन्द थे । सबों ने समझा, गुरु समाधि में हैं । शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियों से बिदा माँग ली ।

X

X

X

पिता से चिमटकर सुरीजा खूब रोई । पिता भी रोने लगे ।

‘अच्छा किया, आ गई सुरीजा ! अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है ।’

बात करते करते उनके मुँह से लाल-लाल रक्त बहने लगा । शेखर

उपचार में लग गया। सुरीला और भी बिहस उठी—मुझे अपने से जुदा करके तुमने अपनी क्या गति कर ली पिताजी !

×

×

×

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

‘शेखर, सुरीला ने मेरी आँखें खोज दीं। मैं भ्रम में था। जिसे अब तक स्वप्न समझा था, वास्त में हकीकत थी, और जिसे हकीकत समझी थी, वही स्वप्न था। मुझे अपने मार्ग का दिग्दर्शन अब हुआ। मैं जाता हूँ और आश्रम का भार तुम दोनों पर छोड़ता हूँ। तुम सुरीला से विवाह कर लो, तुम्हारा कल्याण होगा। मानुषिक प्रेम द्वारा ही तुम्हें दिव्य प्रेम का परिचय मिलेगा। प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने से ही वास्तविक शांति की प्राप्ति होगी। यही तुम्हारे गुरु का अन्तिम उपदेश है।’

शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है और मानव-जाति उस अन्धकार में पथभ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता

बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा ।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ । भगवान् का प्रतिनिधि हूँ । मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है ।

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी । कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते ; कुछ कहते पागल है ; अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो ! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते ।

×

×

×

आखिर तग आकर वह एक अंधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा । उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से खड़ना होगा ।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण-क्रन्दन की आवाज़ सुनी । उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है ।

ज्ञान ने पूछा—बहन क्यों रोती हो ?

उस स्त्री ने कहा—मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था । जब खोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया । मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है ।

ज्ञान का निश्चय और दृढ़ हो गया । उसने कहा—तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ।—और उसे अपने साथ ले गया ।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया । उसने कहा—धर्म सूठा बन्धन है । परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है । धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग रखता है, अतः हमारा शत्रु है !

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृत औरत को अपने साथ रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें ? वह समाज से गतित है, नीच है ।

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया ।

X

X

X

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है । जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खंडन नहीं हो सकता ।

तब वह इसी प्रकार प्रचार करने लगा—वह कहने लगा—ये शर्मश्वजी, ये पुंगी-पुरोहित, मुल्ला, ये कौन हैं ? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बाँध रखने का ? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें ।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गये, क्योंकि वह वगैरे में वरपर विरोध जगा रहा था ।

X

X

X

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था । यही तो तुम्हारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं । पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब...और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा ।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया । वह मैन्चे-कुचैले, फटे-पुराने खाकी कपड़े पहने हुए था । मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थीं, आँखों में एक तीखा दर्द था । उसने ज्ञान से कहा—आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूँ । मैं विदेशी हूँ । आपके देश में भूखा मर रहा हूँ । कोई भी काम मुझे दें, मैं करूँगा आप परीक्षा लें । मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है ।

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ ।

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया । बोला—अच्छा मैं आपके दुःख से बहुत दुःखी हूँ । मुझे अपना भाई समझें । यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है । परमात्मा आपकी रक्षा करे । मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ !

×

×

×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है; जब पेट भरा हो । सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है, पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा...

और उसने 'भूख के लड़ाकों' का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था, अमीरों से धन छीनकर सब में समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना इत्यादि ; लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़वा मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया । वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस ।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा । जीवन उसे बोझ-सा जान पड़ने लगा । निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है ? यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा कितना बेमानी !

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया । बाहर स्याई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा । परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो ; मैं

तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ ; लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं ।

वह स्थिर-सुगन्ध दृष्टि से स्याई के पानी में देखने लगा । वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिविम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है—बस, अपने आपसे लड़ चुके !

X

X

X

ज्ञान सहमकर रुक गया ; फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और किले में चक्कर काटने लगा ।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं ।

एक सप्ताह

गुलमर्ग

१३ श्रावण...

प्यारे कमल,

मुझे माफ़ करना, उस दिन शाम की चाय के समय तुम मेरा हन्तज़ार करते रहे होगे, और मैं हृथर खिसक आया। आज तुमसे ११०० मील की दूरी पर और तुम्हारे कलकत्ता महानगर से ६००० फीट अधिक ऊँचाई पर बैठकर मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम जानते

ही हो कि मैं किस तबीयत का आदमी हूँ। उफ, वहाँ कितना बोझ था। काम, काम, हर वखत काम। मेरी तबीयत सहसा ऊब गई और तुम्हें तक सूचना दिये बिना मैं अपनी कार पर इतने लम्बे सफ़र के लिए खिसक आया। उस दिन चाय के वखत मुझे मौजूद न पाकर यद्यपि तुम मुझ पर काफी खिज तो लिये ही होगे, फिर भी उस असु-विधा के लिए मुझे माफ़ कर देना।

हिमालय की यह विशाल घाटी बड़ी सुहावनी है। घने जंगल, निर्मल झरने, विस्तृत मैदान, चारों ओर बरफ से ढके पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ और दूर पर दिखाई देनेवाली वल्लर झील। इस स्थान से मैं सचमुच प्यार करता हूँ। यह एक सप्ताह बिलकुल निकम्मा रहकर काटूँगा। कुछ नहीं करूँगा। केवल तुम्हें ही पत्र लिखूँगा और तुम्हारे पत्रों को छोड़कर और कुछ भी नहीं पढ़ूँगा।

भाई कमल, मैं अकेला हूँ। तुमने अनेक बार मेरे इस अकेलेपन की आलोचना की है; मगर यहाँ आकर मैं अनुभव करता हूँ कि जैसे प्रकृति मेरी माँ है। मैं अकेला कहाँ हूँ, मैं तो अपनी माँ की गोद में हूँ।

चिन्ता न करना। मैं यहाँ एक सप्ताह से अधिक नहीं ठहरूँगा। २२ श्रावण की शाम को तुम मुझे अपनी चाय की टेबिल पर ही पाओगे।

बाहर एक कसा हुआ घोड़ा मेरा इन्तज़ार कर रहा है, अतः बाकी कल।

तुम्हारा—

स०

[२]

गुलमर्ग

१४ श्रावण...

भाई कमल,

सुबह ६ बजे बिस्तरे से उठा हूँ। अभी तक नींद की खुमारी नहीं

टूटी । कल बहुत दिनों के बाद घुबसवारी की थी, अतः टोंगें कुछ थक गईं-सी प्रतीत होती हैं । आज कहीं नहीं जाऊँगा । मेरे मकान में और कोई नहीं है । मैं अपने सोफे पर अकेला पड़ा हूँ । बाहर भीमी-भीमी वर्षा हो रही है । चारो तरफ़ सन्नाटा है । ओह, सामने की इस खिड़की से कितना अनन्त सौंदर्य मेरे दिखलाई दे रहा है ।

आज कुछ नहीं लिखूँगा । सोचा था कि आज एक चित्र बनाऊँगा ; मगर कुछ नहीं करूँगा । घंटों तक इसी तरह निश्चेष्ट भाव से पड़े रहकर इस खिड़की की राह से प्रकृति का, अपनी मा का अनूठा सौन्दर्य देखूँगा ।

अच्छा, कल तक के लिए बिदा ।

स्वेच्छाधीन —

स०

[३]

गुलमर्ग

१५ श्रावण...

कमल,

इस समय रात के ११ ॥ बज चुके हैं, और मेरी आँखों में नींद नहीं है । सब तरफ़ गहरा सन्नाटा है । कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही । मेरे कमरे में बिजली की बत्ती जल रही है । खिड़कियाँ बन्द हैं । सरदी इतनी अधिक है कि मैं उन्हें खोलकर नहीं रख सका । सन्नाटा इतना गहरा है कि बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे इस कमरे में बैठकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे इस सम्पूर्ण विश्व में केवल मैं-ही-मैं बच रहा हूँ, और कोई भी नहीं है । कहीं कोई भी नहीं है । सिर्फ़ मैं ही हूँ ; अकेला मैं ।

मगर भाई कमल, आज सहसा, न जाने क्यों, मुझे अपना यह अकेलापन कुछ अनुभव-सा होने लगा है । ऐसा क्यों हुआ ? क्या सिर्फ़

इसलिए कि सब ओर सजाटा है और मेरी आँखों में नींद नहीं है ? नहीं कमल, यह बात नहीं है । मेरे हृदय में आज सहसा नई-सी अनुभूति उठ खड़ी हुई है, जो बिलकुल धुँधली और अस्पष्ट सी है । मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने आज जो कुछ देखा है, उसमें बिचित्रता ज़रा भी नहीं है । मैंने जो कुछ आज देखा है, उसे यदि मैं यहाँ लिखूँगा, तो या तो तुम मेरा मज़ाक उड़ाने लगोगे, अथवा मेरे संबन्ध में बिलकुल भ्रान्त-सी धारणा बना लोगे । मगर भाई, मैं कहता हूँ, मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम इन दोनों में से एक भी बात न करना मेरी इस चिट्ठी को पढ़ जाना, और अगर हो सके तो उसी वक्त मुझा देना । बस और कुछ नहीं ।

हाँ तो सुनो । बात है तो कुछ भी नहीं ; मगर फिर भी सुनो । आज दोपहर के वक्त बादल ज़रा छँट गये थे, और सूरज निकल आया था । जैसे विधाता ने इस हरी-भरी घाटी को धो-धाकर धूप में सुखाने के लिए बिछा दिया हो । दोपहर के भोजन के बाद मैं अपनी इस छोटी-सी कोठी के खुले सहन में धीरे-धीरे चहलकदमी करने लगा । सहन के फाटक के सामने ही स्वच्छ जल का एक छोटा सा झरना बह रहा है । उसके ऊपर अनघड़ लकड़ी का एक इतना सुन्दर पुल है कि उसे देखते ही कलरबकस लेकर उसका चित्र बनाने की इच्छा होती है । मैं धीरे-धीरे एक बार इस पुल तक जाता था, और उसके बाद कोठी के बरामदे तक वापस लौट आता था ।

एक बार के चक्कर में जब मैं पुल के निकट पहुँचा, तो मैं चौंक पड़ा । मैंने देखा, वहाँ किसी भद्र कुल की एक नौजवान लकड़ी खड़ी थी । अकेली । उसका ध्यान मेरी ओर नहीं था । झरने के पानी की मधुर ध्वनि ने मेरे चलने की आवाज़ को अपने भीतर छिपा लिया था, इससे मेरे बहुत निकट पहुँच जाने पर भी वह यह न जान सकी कि उसके निकट कोई अन्य व्यक्ति भी मौजूद है । और मुझे तो तुम जानते

ही हो। कितना भूला हुआ-सा चलता हूँ। मुझे तब तक उस लड़की की उपस्थिति का ज्ञान नहीं हुआ, जब तक मैं उसके बिलकुल निकट पहुँच नहीं गया।

मैं चौंका, और उधर उसी समय उस लड़की की निगाह मुझ पर पड़ी। शायद बिलकुल ही अकस्मात्। वह भी चौंक गई। क्षण-भर के लिए सहसा उसकी और मेरी आँखें आपस में मिल गई।

बस, भाई कमल, बात इतनी ही है, और कुछ भी नहीं। मैं उसी क्षण वापस लौट पड़ा था, और जान पड़ता है, वह लड़की भी वहाँ से चला दी थी; मगर इस ज़रा-सी बात ने न-जाने क्यों मेरे दिल पर बहुत अजीब-सा प्रभाव डाला है। इस बात को हुए अब ९ घण्टे बीत चुके हैं, और इन ९ घण्टों में चौंकी हुई हरिणी की-सी वे आँखें मेरे मानसिक नेत्रों के सामने बीसियों बार घूम गई हैं।

तुम सोचते होगे, इस सब में कोई खास बात ज़रूर है। और नहीं तो कम-से-कम वह लड़की कोई असाधारण सुन्दरी तो अवश्य ही होगी; मगर वास्तविकता यह नहीं है। उस लड़की के चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं थी। जम्बा क्रद, मामूली चेहरा, गेहुँआ रंग। और भी कोई बात उसमें ऐसी नहीं थी, जिसे असाधारण कहा जा सके। अपने नगर में हम लोग इस कन्या से अधिक रूप-सौन्दर्यवाली बीसियों युवतियों को रोज़ देखते हैं। मेरी परिचित कुमारियों में भी कितनी ही सौंदर्य की दृष्टि से उससे कहीं बढ़-चढ़कर है। यहाँ गुलमर्ग में भी उससे बहुत अधिक सुन्दरियों को मैंने काफी बड़ी संख्या में देखा है। फिर भी ! कुछ समझ में नहीं आता कि इस 'फिर भी' का कारण क्या है।

आज इतना ही।

तुम्हारा—

सं०

गुलमर्ग

१६ श्रावण

प्रातः ८ बजे

कमल,

नौद से उठते ही सबसे पहले मेरी निगाह रात के पत्र पर गई है । रात में क्या खुराफ़ात-सी लिख गया । दिख में आता है, वह पत्र फाड़ डालूँ ।

जी कुछ भारी-सा है । कुछ लिखने की भी इच्छा नहीं होती । और इस तरह निश्चेष्ट भाव से यहाँ चुपचाप पड़े रहना तो आज मुझे सह्य भी नहीं हो सकता । तुम जानते हो, ऊपर की दो लाइनें लिखने में मैंने कितना समय लगाया है ? पूरे २२ मिनट । इस समय दूसरा पत्र लिख सकना मेरे लिए असम्भव है । चलो, अब कहीं आचारागदों करने जाऊँगा ।

साथं० ६ बजे ।

मेरा जी इस समय बहुत प्रसन्न है । मेरी टाँगें, मेरा सम्पूर्ण शरीर बिलकुल थकी हुई हालत में है ; परन्तु जो चाहता है कि मैं इस समय भी नाचूँ, कूदूँ और इधर-उधर दौड़ता फिरूँ । मेरे हृदय में इस समय उत्साह का अन्धड़-सा चल रहा है, मुझे मालूम है कि उसकी प्रतिक्रिया भी ज़रूर होगी । अपने जी के इस व्यर्थ उत्साह को बहकाने का मुझे इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं मिला कि सुबह का पत्र पूरा करने बैठ जाऊँ ।

सौँफ़ हो आई है । आज का सारा दिन मैंने सैर सपाटे में काटा है । थोड़ी ही देर पहले घर वापस आया हूँ । तुम्हारी चिट्ठी बीच में छोड़कर मैं एक मज़बूत घोड़े पर सैर के लिए निकल गया था । यहाँ के सभी मार्ग मेरे जाने-पहचाने हैं, इससे कोई मार्ग दर्शक भी मैंने

अपने साथ नहीं लिया था। मेरे निवास-स्थान से करीब ८ मील की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ी झरना है। इस झरने को यहाँ 'निंगली नाला' कहते हैं। मैं आज इसी निंगली नाले तक गया था।

खूब टेढ़ी-मेढ़ी राह है। कहीं पहाड़ों के चक्कर हैं, कहीं घास से भरे मैदान, कहीं ऊँचाई-निचाई, कहीं पेचदार मोड़ और कहीं घने जंगल। रास्ता क्या है, ऊबड़-खाबड़-सी एक पगडंडी है। पर मैंने अपना घोड़ा खूब निश्चिन्त के साथ दौड़ाया। ऊपर अमंख्य पक्षियों का मधुर कलरव था। राह के दोनों ओर फूझ पत्तियाँ थीं। हवा में सुगन्ध थी। आसमान में सूरज बादलों के साथ अस्खमिचौनी खेल रहा था। कभी सरदी बढ़ जाती थी और कभी हल्की-हल्की घाम निकल आती थी। शीघ्र ही मैं निंगली नाले पर पहुँचा। झरने के दोनों ओर घना जंगल है। बीच में बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। एक-एक चट्टान सैकड़ों हज़ारों टन की होगी। झरने का स्वच्छ जल इन भीमकाय चट्टानों से टकराकर शोर मचाता है, फिसलता है और फिर उछल-उछलकर इन्हें गीला करता है। झरने की शीतलता, भाग, सफेदी और शोर—ये सब निरन्तर बने रहते हैं। सदा ताजे, सदैव उत्साहपूर्ण।

घोड़े को घास चरने के लिए खुला छोड़कर मैं दो-तीन घण्टों तक झरने की चट्टानों पर स्वच्छन्दतापूर्वक कूदता-फौदता रहा। अपने कैमरे से इस झरने के मैंने अनेक फोटो भी लिये। खाया, पीया और उसके बाद वापस लौट चला।

वापसी में मैंने अपने घोड़े को सरपट नहीं दौड़ाया। राह के दृश्यों ने मेरा सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, अतः घोड़े पर मैंने किसी तरह का शासन नहीं किया। वह आज्ञादी के साथ, चाहे जिस चाल से, चलता रहा। सहसा सामने की ओर से मुझे एक चीख-सी सुनाई दी। मेरी तन्मयता भंग हो गई। मैंने देखा, सामने के मैदान में एक घोड़ा बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा है, और

उस पर एक स्त्री सवार है। घोड़े की ज़ीन को, लेटी हुई—सी दशा में कसकर पकड़े हुए वह नारी सहायता के लिए भरसक चिन्ता रही थी। उसी निगाह में मुझे यह भी दिखाई दिया कि पगडंडी पर तीन-चार अन्य घुड़सवार भी मौजूद हैं। सब की सब लड़कियाँ ही। वे सब अस-मर्थों का सा भाव धारण किये अपने काश्मीरी कुलियों को वह घोड़ा पकड़ने का आदेश दे रही थीं।

एक ही क्षण में मैंने अपना घोड़ा उसी ओर दौड़ा दिया और शीघ्र ही उस स्त्री-सवार के निकट जा पहुँचा। अपने घोड़े पर से कूद-कर मैंने उस घोड़े की लगाम पकड़ ली।

फिर वही आँखें !

मैं सहसा घबरा-सा गया। मुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं क्या कहकर उस कन्या को आश्वासन दूँ। मगर मेरी घबराहट की ओर उसका ध्यान नहीं गया। वह स्वयं ही बहुत अधिक संकटापन्न दशा में जो थी।

पहले उसी ने मुझे धन्यवाद दिया। मालूम होता है, उसने मुझे पहचाना नहीं। धन्यवाद देकर उसने शीघ्रता से कहा—बड़ा नटखट घोड़ा है ! मैं पहले ही कह रही थी कि मैं इस पर सवार न होऊँगी।

उसकी आवाज़ में अभी तक भय की कँपकँपी थी। मैंने कहा—आपने बड़ी हिम्मत दिखाई है। घोड़े की चाल इतनी तेज़ हो जाने पर भी आप गिरी नहीं।

वह इस पर लज्जा-सी गई। उसने कहा—मैं घुड़सवारी तो क्या जानूँ। सुना था, इधर के घोड़े बड़े सीधे होते हैं।

इसी समय उसके साथ की अन्य सभी लड़कियाँ और घोड़ेवाले कुत्ता भी वहाँ आ पहुँचे। घोड़े की लगाम अभी तक मेरे हाथों में थी, और लड़की भी अभी तक घोड़े की पीठ पर ही थी। एक काश्मीरी ने लगाम अपने हाथों में थाम ली और दूसरे ने ज़ीन को सम्भाला। वह

लड़की नीचे उतर आई । उसके साथ की सब लड़कियों ने मुझे धन्यवाद दिया, और मैंने कहा कि इसमें धन्यवाद की बात ही क्या है ।

उन्होंने मुझसे पूछा— आप किस जगह ठहरे हुए हैं ?

मैंने अपना पता बता दिया ।

मेरे निवास-स्थान का पता सुनकर जैसे उस लड़की ने मुझे पहचान लिया । उसके मुँह से हठात् निकला— ओहो ! परन्तु उसी क्षण अपने को पूर्णतः संयत करके उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा— मैं समझ गई ।

इसके बाद दो-चार मामूली-सी और बातें भी हुई, और तब वे लोग निगली नाळे की ओर बढ़ गये । जाते हुए वे कल प्रातः के लिए मुझे अपने यहाँ चाय के लिए निमन्त्रित भी करते गये ।

उस नटखट घोड़े की रास अब एक काश्मीरी के हाथ में थी । वे सब घोड़े अब बहुत भीमी चाल से जा रहे थे, और वह घोड़ा सबसे पीछे कर दिया गया था । मेरी नज़र अभी तक उसी ओर थी । कि कुछ दूर जाकर उस लड़की ने पीछे की ओर घूमकर देखा ।

अचानक एक बार पुनः मेरी और उसकी नज़र मिल गई ।

ओह, फिर वही निष्पाप, लज्जाभरी, स्वच्छ आँखें !

भाई कमल, मुझे नहीं मालूम कि वे लड़कियाँ कौन हैं । सभी नव-युवतियाँ हैं । मेरा अनुमान है कि उनमें से अभी तक किसी का विवाह नहीं हुआ । मैं उनमें से किसी का नाम भी नहीं जानता, मकान का पता देने के लिए केवल एक पुरुष का नाम ही उन्होंने मुझे बताया है । मैं यह नहीं जानता कि वे आपस में बहनें हैं, सहेलियाँ हैं, एक साथ पढ़नेवाली हैं, या रिश्तेदार हैं । मुझे कुछ भी नहीं मालूम । परन्तु एक बात मैंने अच्छी तरह देख ली । वह यह कि उस लड़की के गेहुँए चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं है । उसकी आँखों में, उसकी पलकों या भौंहों में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके सम्बन्ध में कवि

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार] : १२१ : [गल्प-संसार-माला

लोग बड़ी-बड़ी उपमाएँ खोज-खोजकर दिया करते हैं। फिर भी उसकी निगाह में कुछ है। क्या है--यह मैं नहीं कह सकता; मगर कुछ है जरूर।

बाहर अँधेरा हो गया है। सरदी भी अब अनुभव होने लगी है, अतः प्रणाम।

अभिन्न--

स०

[५]

गुलमर्ग

१७ श्रावण...

प्यारे कमल,

आज जाकर मुझे तुम्हारा पहला पत्र मिला है। तुम सच मानो, गुलमर्ग के छोटे-से बाज़ार के साइनबोर्डों के अतिरिक्त यही एक पहली चीज़ है, जिसे मैंने इन पाँच-छै दिनों में पढ़ा है।

मेरा आज का दिन भी बड़े आनन्द से गुज़रा है। सुबह-सुबह मैं उन लोगों के यहाँ चाय पीने गया था। उसके बाद हम लोग एक साथ स्लिजमर्ग की सैर के लिए निकल गये। वहाँ घण्टों तक उस खुले मैदान में बैठकर ताश खेला किये। सैर की, खेले-कूदे और फिर वापस लौट आये। सब लोग मेरे निवास-स्थान पर आये। शाम की चाय यहाँ ही हुई, और अभी-अभी मैं उन्हें उनके घर तक छोड़कर आ रहा हूँ।

मुझे उनका परिचय भी मिला गया है। वह लड़की अपने भाई और एक चचेरी बहन के साथ, काफी दिन हुए यहाँ आई थी। उसके पिता एक सम्पन्न व्यापारी हैं, उनका कारोबार खूब चखता हुआ है। वह लड़की लाहौर के एक महिला-कॉलेज में पढ़ती है, और बाकी तीनों लड़कियाँ उसके क्लास की हैं, उसकी मित्र हैं और उसी के निमन्त्रण

पर यहाँ आई हैं। उसके भाई का स्वभाव भी बड़ा मधुर है। गुलमर्ग में उसके दोस्तों की इतनी अधिकता है कि उनकी ओर से छुटकारा पा सकना ही उसके लिए कठिन हो जाता है। हम लोग आपस में खूब हिचकित हुए हैं। मैंने उन लोगों के अनेक फोटो भी लिये हैं।

आज जल्दी ही सो जाने को जी चाहता है। तुम्हारा पत्र इस समय मेरी आँखों के सामने नहीं है ? कुछ याद नहीं आ रहा है कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी थी या नहीं ? चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो पूछ ही नहीं सकते।

यह भी नामुमकिन नहीं कि मैं कुछ दिन और ठहर जाऊँ।

स्नेही—

स०

[६]

गुलमर्ग

१८ श्रावण,

कमल,

सौंफ़ डूबने को है। दिन-भर से आसमान में बादल छाये हुए थे इस समय मूसलधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द हैं। कमरे में बत्ती जल रही है। मेरे कानों में एक संगीत गूँज रहा है—बहुत करुण, बहुत पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत में शब्द नहीं केवल स्वर है। स्वर भी क्या, केवल गूँज है। छत की टीन पर वर्षा पड़ने की जो यकसों आवाज़ हो रही है, वह इस गूँजमय सङ्गीत का साज है और ठंडी, गीली हवा की धू-धू इस सङ्गीत की तान का काम कर रही है।

मैं अकेला हूँ। दिन-भर अकेला नहीं था; परन्तु इस समय फिर से अकेला ही हूँ। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहाँ आई थी। ३ बजे के करीब उसके भाई चाय के एक निमन्त्रण पर

बाहर चले गये । वह और उसकी बहन यहाँ ही रह गई । कलवाले फोटोग्राफ़ धुलकर आ गये थे । उन फोटोज़ की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही । और भी बीसियों तरह की बातें हुई । शाम का आँधरा जब बढ़ने लगा, तो मैंने उससे अनुरोध किया कि वहाँ कोई गाना सुनाये । बड़ी झिझक के बाद उसने एक गाना मुझे सुनाया । ओह, वह कितना मधुर गाता है । मैं किसी दूसरे लोक में जा पहुँचा । मुझे नहीं मालूम कि संगीत कब समाप्त हुआ । हाँ, उसके भाई साहब का आना मुझे जरूर याद है । देर हो गई थी, अतः वे लोग लौटने को हुए । मैंने इन लोगों को सहन के फाटक से ही बिदा दे दी । उन्हें छोड़ने के लिए दूर तक केवल इसीलिए साथ नहीं गया, क्योंकि मुझे ज्ञात था कि उसके भाई साहब चुपचाप चलना पसन्द नहीं करेंगे, और इस समय मैं न कुछ कहना चाहता था, न बोलना चाहता था ।

उन्हें गये थोड़ी ही देर हुई थी कि ज़ोर की वर्षा शुरू हो गई । मैं तब से इसी कमरे में बैठा हूँ । संगीत कब का थम गया, गानेवाली भी चली गई ; मगर उसकी गूँज अभी तक बाक़ी है—उसी तरह जीवित रूप में काक़ी है । संगीत की वह अनिर्वचनीय अमूर्त्त गूँज वर्षा की आवाज़ का प्राकृतिक साज पाकर मानो और भी अधिक भेदिनी बन गई है ।

कमल, तुम मेरे सुख-दुःख के साथो हो । अपनी सभी अनुभूतियाँ तुमसे कहकर मैं अपने चित्त का बोझ हलका किया करता हूँ ; मगर यह एक अनुभूति कुछ ऐसी है कि इसे मैं ठीक तौर से व्यक्त नहीं कर सकता । मेरे जी में कुछ आँखो-सी चल रही है ; मगर यह आँखी बिलकुल शब्द-रहित है, जैसे नदी का वेगवान् पानी अन्दर-ही-अन्दर से किनारे के कछारों को काट रहा हो ।

अपनी एक पुरानी धुँधली-सी अनुभूति मुझे इस समय साफ़ तौर से समझ में आ रही है । हम मनुष्यों के वाह्य-जीवन आपस में एक

दूसरे पर इतने अधिक आश्रित हो गये हैं कि हम लोगों के लिए इस तरह का एक दिन भी काटना सम्भव नहीं रहा, जब कि एक मनुष्य का किसी भी दूसरे मनुष्य से किसी तरह का वास्ता न पड़े। इस पर भी मैं सदैव अनुभव करता रहा हूँ कि हम लोग आपस में एक दूसरे से बहुत अधिक दूर हैं। हृदयों का यह पारस्परिक अपरिचितपन हमारे दैनिक व्यवहार में, हमारे सामान्य जीवन में कोई बाधा नहीं डालता। फिर भी हमारे जी को, हमारे अन्तःकरण को और शायद हमारी अन्तः-रात्मा को भी यह चाह रहती है कि वह किसी दूसरे जी को, किसी दूसरे अन्तःकरण को अपना ले। यही चीज़, अन्तरात्मा की यही चाह, प्रेम है, जिसे वासना का परिधान पहनाकर हम लोग बहुत शीघ्र मैला कर डालते हैं। आज इस संगीतमय, ठंडे, शान्त और सुन्दरतम वातावरण में मैं यह अनुभव करने लगा हूँ कि मेरे अन्तःकरण में भी इसी तरह की कोई बेचैनी सहसा उठ खड़ी हुई है।

आज उससे मेरी खूब बातें हुईं। अधिकांश बातें बिलकुल बेमतलब की थीं; मगर फिर भी वे बातें अत्यन्त मधुर और दिल को सहलाने-वाली थीं।

एक बात ऐसी भी हुई, जिसने मेरे हृदय को वेग के साथ झन-झना दिया। बातचीत में उसने ज़रा हैरानी के साथ मुझसे पूछा—आप अकेले ही रहते हैं ?

मैंने कहा—हाँ।

उसने पूछा—इमेशा इसी तरह रहते हैं ?

मैंने कहा—प्रायः इमेशा ही।

कुछ क्षण के बाद उसने मुझसे पूछा—सुबह आपको दूध पिलाने का काम किसके हाथों में है ?

उम्मे उसका भोला-सा सवाल बहुत ही मधुर जान पड़ा। मैंने कहा—जो लोग मेरी ज़रूरत की और सब चीज़ों का इन्तज़ाम करते

हैं, वे ही दूध का भी इन्तज़ाम करते हैं ।

उसने फिर पूछा—आप सुबह खाते क्या हैं ?

मैंने कहा—दूध, टोस्ट, मक्खन, शहद, ओबलटीन और थोड़े-से मेवे ।

योंही बिड़कुल निष्कलंक भाव से उसने ज़रा आग्रह के स्वर से कहा—अगर मैं आपके दूध का इन्तज़ाम करनेवाली होती, तो आपको पता लगता कि सुबह के कलेवे में कितना स्वाद आता है ।

मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण झनझना उठा । अपने चेहरे पर हल्की-सी और फीकी मुसकराहट ले आने के अतिरिक्त मैं उसकी इस अत्यन्त मधुर बात का कोई जवाब नहीं दे सका ।

मुझे मालूम है कि उसने जो कुछ कहा था, इसका कोई गहरा अभिप्राय कदापि नहीं था । सम्भवतः घर के लोगों को सुबह दूध पिछाने का इन्तज़ाम उसी के जिम्मे होगा ; मगर फिर भी मेरे दिमाग ने उसकी इस बात को इतनी गहराई के साथ हृदय के पास पहुँचाया कि मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण बहुत ही मीठे स्वरों में ध्वनित हो उठा ।

हाथ ठिठुर रहे हैं । मेरी यह चिट्ठी पढ़कर तुम कहीं ऊबने तो नहीं लगते ? ठीक है न ? या अभी कुछ और सुनने की इच्छा है ?

मगर नहीं, अब और नहीं ।

तुम्हारा—स०

[७]

गुलमर्ग

११ श्रावण

भाई कमल,

इस समय सुबह के ८ बजे हैं । मेरा सामान बँधकर तैयार पड़ा है । सहन में एक कसा हुआ घोड़ा और सामान के टट्टू तैयार खड़े हैं । मैं इसी वक्त नीचे के लिए रवाना होने लगा हूँ । बस, तुम्हें यह पत्र लिख-

कर मैं घोड़े पर सवार हो जाऊँगा । यह भी पूरी तरह मुमकिन है कि इस पत्र से पहले ही मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ ।

कल मैंने इरादा किया था कि कम-से-कम पाँच दिन यहाँ और ठहरूँगा । उन लोगों से भी मैंने यही बात कही थी । आज दोपहर को मुझसे मिलने के लिए उन्हें यहाँ आना भी है ; मगर आज सुबह नींद से बहुत जल्दी जगकर मैंने यही निश्चय किया कि मुझे यहाँ से चला ही देना चाहिये । इस आशय की एक चिट्ठी उनके नाम पर भी डाल रहा हूँ कि एक अप्रत्याशित कार्य के लिए मुझे इस तरह बिलकुल अचानक अपने...नगर के लिए रवाना होना पड़ रहा है ।

तुम इस चिट्ठी को पाकर, अथवा चौथ मुझे ही अपने समीप देखकर, हैरान होगे कि बात क्या हुई । कहने को तो मैं तुम्हें भी यही कह सकता हूँ कि अधिक दिन बाहर रहने से काम-काज में हर्ज होता, इसी से चले आना पड़ा ; परन्तु दरअसल बात ऐसी नहीं है । बात वास्तव में इतनी ही है कि अपनी शिक्षा और अपनी परिस्थितियों के संस्कारों से बाधित होकर ही मैं आज यहाँ से चला दिया हूँ ।

कुछ समझे ? नहीं, मुझे यकीन है कि कमल का मोटा दिमाग मेरी इस महीन बात को ज़रा भी नहीं समझा होगा ।

देखो न, भाई कमल, बात यह है कि पश्चिम की शिक्षा ने, पश्चिम के रीति-रिवाजों ने, हमें यह सिखाया है कि हमें अपने दिल को, अपने अन्तःकरण को, और अपनेपन को बहुत मँहगा बना लेना चाहिये । हम सबसे मिलें-जुलें, सबसे मीठी-मीठी बातें करें, सबसे फायदा डठाएँ, इच्छा हो और सम्भव हो, तो लोगों से सभी तरह के विनोद और आमोद भी प्राप्त करें ; परन्तु अपना अन्तःकरण, अपना हृदय अपने ही पास रखें, क्योंकि वह हमारी चीज़ है, और किसी की भी नहीं । अपने दिल को बिलकुल निस्संग बनाने की भी आवश्यकता

नहीं है ; वह तो आत्म-विनोद का सर्वश्रेष्ठ साधन है । तुम सबसे मिलो-जुलो, हँसकर, खुलकर, मीठी-मीठी बातें करो ; मगर किसी के बन मत जाओ ; अपना सब कुछ किसी के अर्पित मत कर दो । अपने व्यक्तित्व को भावुकता की जड़रीली गैस से मूछित न होने दो ।

मैंने यह अनुभव किया है, कमज, कि मेरे हृदय में अभी भावुकता बाकी है, वह भी काफी मात्रा में । मेरा हृदय मोह में पड़ गया है । पूरब के अशिक्षित मनुष्यों के समान वह चाहता है कि वह जिसकी ओर झुका है, उसी का बनकर रहे ; मगर मेरे दिमाग की शिक्षा ने मेरे जी को यह चेतावनी दी है कि प्रेम का उद्देश्य सर्वस्व समर्पण की भावना नहीं, अपितु आत्म-विनोद मात्र है । परन्तु मुझे भय है कि इस खास मामले में मैं अपने मस्तिष्क के आदेश का पालन शायद ही कर सकूँ । इससे मैंने निश्चय किया है कि मैं अपने को इस कठिन परीक्षा में न डालूँ और यहाँ से चल दूँ । देखूँ, इस सब का परिणाम क्या होता है । देखूँ, गुलमर्ग को मुला सकता हूँ या नहीं । अब तो आ ही रहा हूँ । बेफ़िक्र रहो । मैं नए युग की उपज हूँ ।

अभिज्ञ—स०

मैना

अखियार जब मरा, तो दो पुत्र, छोटा-सा घर और थोड़ी-सी ज़मीन छोड़कर मरा। दसवें के दिन दोनो भाई क्रिया-कर्म समाप्त करके सिर मुड़ाकर आये, तो आने के साथ ही बटवारे का प्रश्न खिड़ गया। और इस समस्या के समाधान के लिए हतने ज़ोरों से क्वाठियाँ चलीं कि दोनो भाइयों के मुश्किल मुण्ड फूट गये।

दोनो भाइयों ने इस प्रकार एक-दूसरे का सिर फोड़कर अपना-अपना अपमान मान लिया। बड़े भाई 'मुसाफिर' की धारणा थी कि

छोटे भाई ने सिर फोड़कर मेरा बड़ा भारी अपमान किया है । छोटे भाई 'जगन' की भी यही शिकायत थी कि बड़के भइया ने बड़ी मज़बूत ज़ाठी से मेरा अपमान किया है । दोनों ने प्रतिज्ञा की कि इस अपमान का बदला नहीं लिया, तो मेरा नाम नहीं !

किन्तु अपमान के प्रतिशोध के लिए मुक़दमा लड़ने को किसी के पास पैसे नहीं थे । केवल ज़ाठियों का भरोसा था ; लेकिन इसका मौज़ा नहीं था । दोनों ही सतर्क रहते थे । ख़ैर, किसी प्रकार दोनों भाई अपने उसी घर में, एक ग़्यान में दो तलवारों की तरह रहने लगे ; लेकिन एक ग़्यान में दो तलवार के रहने से तलवारों का उतना जुक़सान नहीं होता, जितना कि बेचारे ग़्यान का । दोनों का क्रोध अपने घर ही पर उतरता था । मुसाफिरराम को ज़रूरत हुई, तो छोटे भाई के लगाये हुए कुम्हड़े, और करैले की ज़ताओं को तहस-नहस करके अपनी गोशाला बना ली । इधर जगन ने आवश्यक समझते ही बड़े भाई के भंडार घर को तोड़कर दरवाज़े के साथ मिला दिया । घर तोड़ने की ख़बर सुनते ही मुसाफिरराम अपने भाई का सिर तोड़ने के लिए तैयार हो गये ; किन्तु गाँववालों ने बीच-बचाव करके भगड़ा शांत कर दिया ।

यह लड़ाई केवल पुरुषों तक ही थी, यह बात नहीं है । स्त्रियों में भी ऐसा घमासान वाग्युद्ध होता था जिसका ठिकाना नहीं ।

हाथ चमकाकर, माथा मटकाकर, नथ हिलाकर, ऐसी-ऐसी गालियों की बौछार की जाती थी, जिसका अमृतरस लूटने के लिए गाँव की सारी महिलाएँ एकत्र हो जाती थीं । मुनिया को आदमी का माँस खाना अभीष्ट नहीं था, फिर भी बड़ी तेज़ी से निनाद करके रधिया को धमकी देती थी—तेरा भतार खा जाऊँगी ! रधिया भला अपनी चीज़ कैसे दे सकती थी ? चट से कहती—मेरा भतार क्यों खायगी ; तेरा मुस्टंडा तो अभी जीता ही है, उसी को चबा ! इसी प्रकार दोनों देवरानी-जेठानी

साहित्य के नवरसों से भिन्न गाली-रस की सृष्टि किया करती थीं ।

यह लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज, एक दो दिन रहता, तब तो ठीक ; यहाँ तो महीने की लम्बी डग मारता हुआ साज चला गया । घर और बाहर के सभी इस झगड़े से ऊब उठे । गाँववालों ने कहा—भाई, तुम लोग आपस में क्यों इतना झगड़ा करते हो ? अपनी-अपनी चीजें बराबर बाँट लो, बस झगड़ा खतम हो गया ।

दोनों ने सकार लिया, बात ठीक है ।

आखिर एक दिन गाँववालों की पंचायत जमा हुई । सब कुछ देख-भाजकर दुखहरन पाँडे ने, तम्बाकू फाँकते हुए फैसला सुना दिया । और तब आँगन के बीच में दीवार खींच दी गई । घर की कोठरियों को गिन-गिनकर अलग किया गया । हल, बैल, खेती, बारी सब कुछ अलग-अलग हो गये । अब कोई भाई किसी से बोझना भी पसन्द नहीं करता था । एक दूसरे को देखते ही घृणा से मुँह फेर लेता था ।

[२]

उपर्युक्त घटना को दो वर्ष बीत गये ।

बिल्ली की तरह घर-घर घूमनेवाली पद्मिनी काकी एक दिन मुसा-फिर के घर में जाकर बोली—मुँह मीठा कराओ, तो एक बात कहूँ !

रधिया ने डरसुकता से पूछा—कौन बात है काकी, कहो न ?

‘तुम्हारा भतीजा होनेवाला है !’

रधिया का चेहरा घृणा से सिकुड़ गया । क्रोध से जल उठी । मुँह बिचकाकर बोली—अय नौज, चूल्हे-भनसार में पड़े भतीजा, और देवी मह्या के स्वरूप में जायँ हमारे देवर-देवरानी । इनको बेटी-बेटा हो, इससे हमको क्या और नहीं हो, इससे क्या । अगर इन लोगों का बस चले, तो हम लोगों को न जाने कब फाँसी लटका दें । ये लोग जैसे अपने हैं, उससे गैर ही कहीं अच्छे ।

इस प्रकार रक्षिया ने भलीभाँति साबित कर दिया, कि इससे मुझे तनिक भी खुशी नहीं और पद्मिनी काकी का मुँह मीठा खाने लायक नहीं है ।

यह बात बड़े विस्तार-पूर्वक मुनिया के निकट पहुँची । रक्षिया जलती है, यह सुनते ही उसे एक ईर्ष्यामय आनन्द हुआ । बोली—अभा! से उस कलमुँही के कपार में आग लग गई, तब तो लड़का होने से वह छाती फाड़कर मर जायेगी !

जगन घर में आया, तो उसे भी यही समाचार सुनना पड़ा । सुनकर उसे दर्ष नहीं हुआ । घृणा से जी छोटा हो गया । अपने भाई-भौजाई होकर भी ये लोग कितने नीच हैं ! बोला—वे लोग तो जनम के जलन्त, उनकी बात को लेकर कहाँ तक क्या किया जाय ?

उन दिनों पद्मिनी काकी प्रतिदिन, एक नई सनसनीदार घटना की खबर लेकर, मुनिया के निकट उपस्थित होती थी । आज रक्षिया देवी मैया के मन्दिर में धरना देने गई है, कि तुम्हारे पेट का लड़का नष्ट हो जाय । आज एक ओम्हा बुलाया गया है । बड़ा नामी ओम्हा है । उसके मन्त्र का मारा हुआ पानी भी नहीं पीता । भगवान् जाने क्या होगा । रोज इसी प्रकार की नई घटनाओं का उत्तेजक करके वह मुनिया से कुछ-न-कुछ जोग-टोट के लिए झटक ही लेती थी ।

किसी प्रकार इन मारन-मोहन-उच्चाटन वशीकरण से घोर युद्ध करता हुआ, कई महीनों का सुदीर्घ समय व्यतीत हो गया । आज मुनिया को लड़का होनेवाला है । उसकी वर्षों की मुराद पूरी होगी । खाली गोद भर जायगी । जगन के इष्टमित्र भी चढ़क रहे थे—भाई, भर पेट खिलाना पड़ेगा, यहाँ पौने तीन सेर से छटाक भर भी कम नहीं खाते । जगन प्रसन्नता-पुलकित होकर उत्तर देता—अरे इतना खिलाऊँगा कि खाते-खाते पेट फट जायगा । भीतर गाँव की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चे की सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं । अन्य महिलाएँ स्वयं-

सेविकाओं की तरह दूसरे-दूसरे काम में व्यस्त थीं ; किन्तु न मुसाफिर का पता था और न रक्षिया का । बाहर एक आदमी ने जगन से कहा — इस समय तुम्हें सब बैर भूलकर अपने भाई को बुलाना चाहिये था । जगन ने उत्तर दिया—बुलाया भाई, पचासों दफे आदमी भेजा, खुद गया, जब आते ही नहीं, तो क्या करूँ ?

भीतर की औरतें आपस में कह रही थीं, ऐसे समय में आदमी सब लाग-डाट भूल जाते हैं । भाई-भौजाई होकर भी वे लोग नहीं आये ।

इस समय भी मुनिया कहने से न चूकी—चूल्हे में जाँय वे लोग, नहीं आये यही अच्छा हुआ !

उस समय रक्षिया अपने घर में चिन्ता से चूर बैठी थी । ईर्ष्या से उसका कलेजा जल रहा था । बार-बार भगवान् को दोष दे रही थी, उसे क्यों लड़का हो रहा है, मुझे क्यों नहीं हुआ ?

मुसाफिर को तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उसका सर्वस्व लुट गया । अगर कहीं लड़का हुआ, तो मेरे घर-द्वार का भी बही मालिक होगा । आज तक उसने कभी अपने निःसन्तान होने के विषय में नहीं सोचा था । किन्तु अब यही बात, तीर की तरह, उसके हृदय को बार-बार बेध रही थी । गाल पर हाथ रखे वह इन्हीं ईर्ष्यामय विचारों में मग्न था । पड़ोस का शोर-गुल उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे यह सब आयोजन उसी को चिढ़ाने के लिए किया गया है ।

इसी समय मालूम हुआ, कि जगन के यहाँ लड़की पैदा हुई है ।

मुसाफिर ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—जाने दो, लड़का नहीं पैदा हुआ, यह अच्छा हुआ ।

यह उसके मन की वह प्रवृत्ति थी, जो निराशा की डाल पर भी सन्तोष के घोंसले बनाती है ।

[३]

समय पंछी उड़ता हुआ, छः वर्षों का पथ और भी पार कर गया ।

जगन की लड़की मैना अपने द्वार पर बैठी हुई धूल के चरौदे बानती और बिगाड़ती नज़र आती थी। उसे देखकर मुसाफिर को क्रोध नहीं आता था, एक प्रकार का ममत्व जागृत हो उठता था। जी में आता था कि उस धूल-धूसरित बालिका को गोद में उठाकर चूम ले। वह दूर से बैठकर उसकी बाल-क्रीड़ा को देखता था और फूझा न समाता था। मैना को गोद में लेने की बलवतो इच्छा को वह कैसे दबाता था, वह उसके सिवा और किसी को नहीं मालूम।

असाढ़ रथ-द्वितीया के दिन उसी के गाँव के समीप, करौदा में मेला लगता था। उस मेले में कोई प्लास बात नहीं थी। जगन्नाथ स्वामी के मन्दिर में खूब घड़ी-घण्ट बजाकर, उनकी पूजा होती थी। सन्ध्या के समय, मनुष्यों के रथ पर लदकर, देवताओं को एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में पहुँचा दिया जाता था। आसपास के सभी गाँववाले यहाँ एकत्र होते थे, काफी भीड़ जुट जाती थी। मुसाफिर भी वहाँ गया था। वहाँ खिलौनों को दूकान देखकर ठिठक गया। इच्छा हुई कि मैना के लिए कुछ खिलौने लेता चलूँ। फिर सोचा—मगर इसके लिए कहीं जगन या उसकी बहू कुछ कह दे तब ? उसने इच्छा को बलपूर्वक त्याग दिया और आगे बढ़ा। आगे भी खिलौने की दूकान थी। एक-से-एक अच्छे खिलौने भलीभाँति सजाकर रखे हुए थे। मुसाफिर रुक गया और दूकान की ओर देखने लगा। खिलौने सभी सुन्दर थे जिस पर दृष्टि जाती थी, उससे आँखों को हटाना कठिन था। यदि इसमें से एक भी खिलौना मैना को मिले, तो वह कितनी खुश होगी ! मुसाफिर की कल्पना की आँखों के आगे मैना उसके दिये हुए खिलौने को लेकर छाती से लगाये हुए दिखलाई पड़ने लगी। वह इसी आत्मविस्मृत दशा में दूकान के सामने जाकर खड़ा हो गया। एक खिलौना उठाकर पूछा—इसका कितना दाम है ?

‘छः आने !’

मुसाफिर को मानो होश हुआ। यह खिलौना मैं किसके लिए खरीद रहा हूँ ! उसी के लिए, जो मेरे बैरी की लड़की है ! मगर अब क्या करता ? दाम पूछ चुका था, अगर वहाँ से यों ही चला देता तो बड़ी हेठी होती। बस टाल देने के लिए बोला—तीन आने में देते हो तो दे दो।

‘अगर लेना ही है तो चार आने से कौड़ी कम नहीं लूँगा।’

अब तो सिर्फ चार पैसों पर बात अटक गई। अगर लेही लूँ, तो क्या होगा। मेरा दुरमन जगन है कि उसकी लड़की ! बेचारी का क्या कसूर। जैसे वह जगन की लड़की है, वैसे ही मेरी लड़की है। बेचारी को मैंने कभी कुछ नहीं दिया। लोग अपने भतीजे-भतीजी को लाख दो लाख दे देते हैं, अगर मैंने एक चार आने का खिलौना ही दे दिया, तो क्या दिया ?

मुसाफिर जब खिलौने को खरीदकर चला, तो उसके हृदय में जितना उल्लास था, उतना ही भगड़े की आशंका भी थी।

साँझ के समय घर पहुँचा। मैना उस समय अपने पिता से पाई हुई सीटी बजा-बजाकर खुश हो रही थी। इसी समय मुसाफिर जाकर उसके सामने खड़ा हो गया। खिलौना हाथ पर रखकर कहा—देख बेटी, यह खिलौना तेरे लिए लाया हूँ, पसन्द है ?

मैना खुशी से नाच उठी। बोली—हाँ चाचा, खूब पसन्द है ; अबकी मेला में जाओगे, तो मेरे लिए एक हाथी, एक खरगोश और एक कछुआ लेते आओगे ?

‘अच्छा, लेता आऊँगा’—कहकर मुसाफिर ने उसे गोद में उठाकर चूम लिया।

मैना बोली—तुम बड़े अच्छे आदमी हो चाचा, तुम मेरे लिए मेले में खिलौना ला देते हो, गोद में लेकर दुखार करते हो।

मुसाफिर ने स्नेह से पूछा—और तेरा बाप दुखार नहीं करता ?

मैना सिर हिलाती हुई बोली—नहीं, वह दुबारा नहीं करता, वह तो मुझे गोद में भी नहीं लेता ।

(४)

एक दिन मुसाफिर गोद में मैना को लिए हुए घर के भीतर गया, तो रधिया बोली—तुम्हारे रंग-ढंग मुझे अच्छे नहीं लगते ।

मुसाफिर ने सहज उत्सुकता से पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

पराई बेटी के पीछे काम-धनधा छोड़कर, दिन-रात पागल बने फिरते हो । अगर अपनी बेटी होती तो क्या करते ! कल खेत पर भी नहीं गये, सारा दिन बाँस की गाड़ी बनाने में बिता दिया ।

मुसाफिर ने हँसकर कहा—पराई बेटी कैसे हुई ! क्यों मैना, तू दूसरे की बेटी है ?

मैना ने सिर हिलाकर कहा—नहीं ।

‘तब किसकी बेटी है ?’

मैना उसके गले में अपनी दोनों बाँहें ढालकर बोली, तुम्हारी !

मुसाफिर मुसकराता हुआ गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला—देखती हो ?

रधिया ने कहा—सब देखती हूँ ; लेकिन अगर कहीं कुछ हो गया, तो यही समझ लो कि तुम्हारे सिर का एक बाल भी नहीं बचेगा । जो कुछ असर-कसर बाकी है, वह भी पूरी हो जायगी ।

मुसाफिर ने मैना को चूमकर कहा—मेरी बेटी को क्यों कुछ होगा, जो कुछ होना होगा, सो इसके दुश्मन को होगा । क्यों बेटी ?

मैना ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति जता दी ।

रधिया ने मुँह फुलाकर कहा—एक दफे कपार फुटवा ही चुके, अबकी मालूम होता है, मूँछें उलझवाओगे ।

मुसाफिर के दिख में कुछ चोट लगी । उसने सिर उठाकर कहा—तुम तो मैना को फूटी आँखों भी नहीं देख सकतीं । यह मेरी गोद में

नहीं आवे, तब तुम्हारा कलेजा ठंडा रहेगा ।

रक्षिया तीव्र स्वर में बोली—कौन कहता है मैना मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाती ? बोलते कुछ लाज भी लगती है कि नहीं । लड़के-बच्चे भी किसी के दुश्मन होते हैं मैना को देखती हूँ, तो गोद में लेने के लिए तरसकर रह जाती हूँ ; मगर कहीं तो क्या, इसके माँ-बाप ऐसे हैं, जिनसे दुश्मन भी भला । छोड़ देती हूँ, कौन जाने मैना को दुलार करने से हमारी माँ-कनजी रोंड़ निपुती करने लगे ।

इसी समय मैना अपने चाचा की गर्दन झुकभोरकर बोली—चाचा चाचा, चलो मुझे गाड़ी पर चढ़ाकर टहला दो ।

‘चल !’—कहता हुआ मुसाफिर उसे लिये हुए घर से बाहर चला गया ।

उस दिन मैना गाड़ी पर चढ़कर खूब घूमी ; लेकिन जब उसकी छोटी-सी गाड़ी समस्त गाँव की परिक्रमा करके लौटी, तो उसे कुछ ज्वर-सा हो आया था मुसाफिर ने देखा कि उसका शरीर कुछ गर्म है । बोला—घर चली जाओ बेटी, शायद तुम्हें बुखार आयेगा ।

मैना ज़िद करने लगी—नहीं चाचा, थोड़ा और घुमा दो । थोड़ा-सा । फिर घर चली जाऊँगी ।

‘नहीं नहीं’, अब घर जाओ ।’

मैना मखीन मन गाड़ी से उतरकर घर चली गई । उस दिन वह बहुत उदास हो गई थी । चाचा यदि थोड़ा और घुमा देते तो क्या होता ?

(५)

दूसरे दिन, मुसाफिर दिन भर मैना को नहीं देख सका । मालूम हुआ कि उसे ज्वर हो आया है । मुसाफिर दिन भर बहुत ही उदास रहा । खेत पर भी नहीं जा सका । बैल भूखे थे, उन्हें सानी देने की भी याद नहीं रही । मालूम होता था, जैसे वह निर्वासित कर दिया

गया है। मैना के बिना उसे अपना जीवन सुनसान और भयावना प्रतीत होता था। वह जहाँ बैठा था, दिन भर वहीं बैठा रह गया। रात हुई तो रक्षिया आकर बोली—आज स्वाश्रोगे नहीं क्या ?

‘ना, आज भूख नहीं है।’

‘तुम तो मुफ्त में अपनी जान गँवा रहे हो। जिन लोगों के लिए प्राण दत्त रहे हो, उन्हें तो तुम्हारी परवाह ही नहीं है। यह किसी से नहीं हुआ कि तनिक बुझाकर दिखवा देते। हाथ री बच्चो, कब ही भली-चंगी थी, आज न जाने कैसे क्या हो गया ! मेरा तो जी चाहता है कि जाकर एक बार देख आती।’

मुसाफिर प्रसन्न होकर बोला—चली जाओ न ; देखती आना।

रक्षिया ने कहा—जाती तो ; लेकिन महारानीजी से डर लगता है कि कहीं डाइन कहके बदनाम न कर दें। और तुम्हारा सपूत भाई भी कम नहीं है। ना, मैं नहीं जाऊँगी ; तुम्हीं जाओ।

‘तुम्हारे जाने से लोग बुरा मानेंगे, तो क्या मेरे जाने से भला मानेंगे ?’

‘तो जाने दो, मगर चलो स्वा लो। ऐसे कब तक रहोगे ?’

‘जब तक मन करेगा।’

‘भगवान् लोगों को दुख देते हैं, तो क्या सभी खाना छोड़ देते हैं ? दुनिया का काम तो सभी को करना ही पड़ता है।’

‘खाऊँगी तो जरूर ; लेकिन अभी भूख नहीं है।’

रक्षिया निराश होकर चली गई। मुसाफिर वहाँ बैठा-बैठा क्या सोच रहा था, यह वही जाने ; लेकिन जब रात भीग गई, दस से ऊपर हो गये और रात्रि के सन्नाटे में कुत्तों का भूँकना जारी हो गया, तब मुसाफिर जगन के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया। दीवार से कान लगाकर, बहुत देर तक मैना की बोली सुनने को चेष्टा की ; किन्तु निष्फल ही रहा। अन्त में निराश होकर घर लौट आया और चुपचाप सो गया।

मैना तीन-चार दिनों तक तो बुलार में डूबी रही, पाँचवे दिन सन्निपात हो गया। बचने की आशा जाती रही। मुसाफिर यह सब सुनता था और मन-ही-मन हाय करके रह जाता था।

आखिर एक दिन मुनिया के क्रन्दन से जगन का घर गूँज उठा। मुसाफिर के हाथ-पाँव फूल गये। वह पागल की तरह दौड़ा हुआ जगन के आँगन में पहुँच गया। घबराया हुआ बोला—जगन, जगन, क्या हुआ ?

जगन रोता हुआ घर से निकला—भइआ, हम लुट गये, भइआ, मैना !...

मुसाफिर भी कातर भाव से हाहाकार करके रो उठा, हाय मेरी बेटी !...

जब लोग मैना की लाश को उठाकर ले चले, उस समय मुनिया भी सिर के बाँझ खोले पगली की तरह रोती हुई जा रही थी। हाय रे ! मेरी भखी-सी बच्ची को लेकर तुम लोग कहाँ जा रहे हो ? जाओ, उसे मुझे दे दो, वह दूध पीकर चुपचाप सो जायगी। हाय रे, मेरी बच्ची !...सुनो...सुनो तो...

इसी समय रधिया अपने घर से दौड़ती हुई निकली और मुनिया को पकड़ लिया। उसे अपनी छाती से लगाकर बोली—न रोओ बहना, न रोओ ! भगवान् ने हम लोगों को दुःख दिया है, तो सहना ही पड़ेगा।

उस समय तक शव ले जानेवाले आँखों की ओट हो चुके थे।

प्यासी हूँ

कोई बारह बज चुके थे। दुनिया के पर्दे से स्वप्न की रानी झँक रही थी—विजेता की भोंति, उसके नुपूर के मिन्नन गाँत से पृथ्वी झुँझित-सी होती जाती थी।

वकील केशव के उस बड़े मकान के सभी कमरों की बत्तियाँ बुझ चुकी थीं, केवल सहाना का कमरा तब भी बिजली का शिखर से उज्ज्वल हो रहा था। मल्लमल के काउच पर कुत्ते के बच्चे को जिये वह बैठी थी। पलंग के सफेद रेशम के बिस्तर को किसी ने छुआ तक नहीं था,

गुलदस्तों के फूलों की मीठी सुगन्ध से कमरे की हवा व्याकुल हो रही थी ; गुलाबजल से बसे पान के बीड़े अनादर से रकबी पर ही सूख रहे थे, दीवाल पर के आयल-पेंटिंग चित्रों के नीचे की दीप-शिखाएँ उस गहरी रात में कुछ ग्लान-सी हो रही थीं, शायद नींद से उनकी आँखें भी अलसा रही हों ; किन्तु उसकी पलकों में नींद की एक इलकी सी छाया भी न थी । वह उस बच्चे को सुला रही थी परम आदर के साथ । कभी उसे आदर, प्यार, सोहाग से बेचैन कर देतो, तो कभी उस हृदय से लगाती, मुँह चूमने लगती । वह भूल बैठी थी पति के अस्तित्व को, जो कि कुछ ही दूर आराम कुर्सी पर अचछेरे हुए नारी हृदय की माता की प्यास को मातृत्व की बुभुक्षा को अपलक नेत्रों से देख रहा था । उसकी दृष्टि जीवन्त विस्मय से विमूढ़ हो रही थी । मुकदमे के कागज वैसे ही इधर-उधर पड़े थे, उस ओर ध्यान देने योग्य उस समय उसके मन की स्थिति नहीं थी ।

आज अचानक नहीं ; परन्तु कई दिनों से केशव शायद अपनी भूल कुछ-कुछ समझ रहा था । एक अनजान दर्द, एक अपरिचित अभाव से वह कभी बेचैन हो जाता, चेष्टा करने पर उसकी समझ में बात नहीं आती कि वह क्या, वह अभाव किस लिए और क्यों है ! वह अनजान-सा बना रहता ।

पत्नी की दीर्घ श्वास, कुत्ते के प्रति उसकी लाजायित दृष्टि केशव के अन्तर के किसी गोपनीय अंश में आघात कर बैठी, जुही की आँखों के सामने से हट गई, मोती-जैसे फूल बिखर गये । गत-दिवस के वे रंगीले दृश्य चल-चित्र के समान सामने अढ़ गये, जहाँ कि एक नारी रूप, रूप-गन्ध-पूर्ण अपने सुगठित यौवन की मदिरा भरे कलस को लेकर उसी के पैर तले बैठी वर्षों' विनिद्र रजनी बिता दिया करती थी, नारी रूप उपासक के पैरों में अपने श्रेष्ठ मातृत्व तक को न्योछावर करने में जिसने विचार तक नहीं किया था, पति की तृष्टि के लिए जिसके

नयन, प्रत्येक रोम सदा खुशी की वर्षा किया करते थे, नूतनत्व विहीन, सम्पूर्ण लुटी हुई नारी। वह यही है। बाहरी जगत के तीव्र आकर्षण, करोड़ों कामों में पिसकर, जिसे कि आज बासी माछा की तरह दूर फेंक देना पड़ा है, वह दूसरी नहीं—यही है—यही, यही। जिसे कि आज इस विद्यासिता के अन्दर तपस्विनी गौरी की तरह जागते ही रात बिताना पड़ रहा है, कुत्ते और बिल्ली के पिल्लों को लेकर मा की व्यास—केशव जबरन ही हँस पड़ा। अपने-आपको डाँटने लगा—यह सब वह क्या सोच रहा था ? वह आश्चर्य में था कि ऐसे विचार उसके मन में उठे ही क्यों ?

उस हँसी से सहाना चौंकी—अभी सोओगे ? बत्ती बुझा दूँ ?

‘नहीं, अभी कागज़ देखना है।’

‘क्या रात-भर काम ही करते रहोगे ? दो बज रहे हैं।’

‘किन्तु अभी तक तो तुम्हारे खेल को देख रहा था। बुढ़ापे में कुत्तों के पिल्लों से खेलते तुम्हें शर्म नहीं आती, लोग कहेंगे क्या ?’

सहाना ने सहमी हुई आँखें उठाई—उसकी मा मर गई है, बच्चा दिन-रात रोया करता है। आँसू छिपाने के लिए सहाना ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

‘एक दिन मरना तो सबको है, फिर कुत्ते, बिल्ली के लिए यदि सभी आँसू बहा दोगी तो मेरे लिए बचेगा क्या ?’

‘तुम फिर वही बातें करते हो।’ उसने अभिमान से मुँह फेर लिया। बहुत दिनों के बाद पति के मुँह से इसी भूले-से परिहास की सुनकर वह विस्मृत हो रही थी। गत प्रेम के दिनों का जीवन ही कितना था ? बूढ़े भर ओस, जुगनु की दीवट, फूल की पंखुड़ी की तरह छोटे, बहुत ही छोटे दिन, किन्तु उन छोटे दिनों को वह प्रेम-स्मृति सहाना के निकट अमर और अविनाशी थी।

‘बहुत दिनों के बाद।’ उसने धीरे से कहा।

‘मैं उन बातों को भूझा नहीं हूँ सहाना ! किन्तु मैं कभी आश्चर्य करता हूँ, सोचता रहता हूँ कि जिस अन्तर में कभी दिन-रात प्रेम प्यार की पुकार उठा करती थी, आज चेष्टा करने पर भी क्यों नहीं उठती ? शायद मेश यौवन मर चुका हो ।’ केशव का स्वर दर्द से भरा हुआ था । सहाना हँसी, उस हँसी की जाति ही निराली थी ।

(२)

‘पूजा के कमरे में आज से तुम मत जाना दुलहिन ।’ सहाना की सास नर्मदा ने कहा ।

फूल चुनते-चुनते वह रुकी—क्यों अम्माजी ?

‘सवेरे हलकू को दूध नहीं पिला रही थी ?

‘वह रो रहा था ।’

‘साईस का लडका रोये या मेरे अपने को क्या ? बड़े घर में आई हो, जात-पात का भी तो कुछ विचार किया करो । कहाँ वह जैसवारा और कहाँ हम ब्राह्मण ! कुत्ते, बिल्ली दिन भर लिये रहती हो, मेरे हज़ार सर पीटने पर भी मानती नहीं । दिन-पर-दिन तुम हठी होती जाती हो । ऐसा अनाचार मैं सह नहीं सकती हूँ ।’

उत्तर देने के लिए सहाना के कंठ में शब्दों की भीड़-सी लग गई । किन्तु फिर भी उसका उत्तर संक्षिप्त ही हुआ—वह छः महीने का अबोध शिशु है अम्माजी । मरते वक्त दुखिया बच्चा मुझे सौप गई थी ।

‘आज जैसवारा तो कल मेहतर के बच्चे को उठा खाना । मेरे रहते इस घर में तेरा अधिकार ही कौन-सा है ? मेरे मत के विरुद्ध यहाँ कोई काम नहीं हो सकता है । उसे अभी दूर कर दे ।’ गृहिणी झुँझला पड़ी ।

‘नहीं ।’

‘क्या नहीं ?’

‘नहीं’ ।’

नर्मदा के चिल्लाने से केशव भीतर आ गया—‘क्या है ?’

‘भैया, मुझे तू काशी पहुँचा दे ।’

‘क्यों माँ !’

‘क्योंकि मैं नौकरानी होकर नहीं रह सकती हूँ । तुम्हीं से पूछती हूँ—घर की मालकिन बहू है या मैं !’

केशव को चुप रहते देखकर माता जल उठी—‘कहो, मैं तुमसे सुनना चाहती हूँ ।—माता ने अपना प्रश्न दुहराया ।

‘तुम्हारे रहते हुए तो दूसरी कोई मालकिन बन नहीं सकती । परन्तु उसे भी तुम्हीं लाई हो, और अधिकार भी दिया है ।’

केशव की पूरी बातें सुनने का धीरज उस समय गृहिणी में था नहीं । नर्मदा ने कहा—‘तो तुम्हारे राज में आज क्या चमार, भंगी के साथ बैठकर खाना पड़ेगा !’

‘ऐसा करने को तुमसे किसने कहा ?’

‘तुम्हारी पत्नी ने । सवेरे से दुस्निया के लड़के को उठा लाई है । कहती है, उसे रखूँगी ।’

‘क्या यह सच है ?’

‘हाँ । उसकी माँ मुझे सौंप गई है ।’

‘किन्तु वह जैसवारा का लड़का है । इस घर में उसकी जगह कैसे हो सकती है सहाना ?’

‘जैसवारे के घर में जन्म लेना क्या उसका अपराध है ?’

उत्तर दिया नर्मदा ने—‘ऊपर से लगी जवाब-सवाल करने ! तेरी हिम्मत देख-देखकर मैं अवाक् होती हूँ । दूसरी सास होती तो तुझ जैसी बाँझ का मुँह भी न देखती । व्यथा से उसका चेहरा पीला पड़ गया । अपने को सँभालकर सहाना ने कहा—‘मैं आप से नहीं’, उनसे पूछती हूँ, कि यदि आत्मा अमर है, ईश्वर का अंश है, और सभी में

उसी एक पावन आत्मा का प्रकाश है, तो यह झुझा-झूत का प्रश्न उठा ही क्यों और कैसे ?

‘जोकाचार है, समाज का नियम है । जब कि उसी समाज में हमें रहना है, तब उसके नियमों को मानना भी जरूरी बात है ।’

‘मैं कब कहती हूँ कि तुम निराशे समाज में चले जाओ । किन्तु पुराने की महिमा में मुग्ध होकर उसके कीचड़ को सन्दूक में भरकर रखने में कोई पौरुष, कोई श्लाघा नहीं है । प्रकृति के नियम से नित नई वस्तु बनती और मिटती हैं । पुराने में जो भली वस्तु है उसका सम्मान और रक्षा हम अवश्य ही करेंगे । परन्तु बुरे को सदा त्यागने के साहस की कमी हम में कभी न हो, यह प्रार्थना मैं ईश्वर से किया करती हूँ ।’

‘तो तुम इस नियम को खराब कहती हो ?’

‘हज़ार बार । आदमी आदमी को घृणा करेगा, यह निरी पहेली ही नहीं, अपराध भी है ।’

‘मैं घृणा की बात नहीं कहता, केवल मा के सम्मान के लिए तुम बच्चे को हटा दो, सहाना ।’ वह डर रहा था—क्योंकि स्वाधीन स्वभाव की पत्नी को वह भलीभाँति पहचानता था—‘नहीं’ कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा—‘नहीं, यह असम्भव है, तुम्हारे और मा के सन्तोष, सम्मान के लिए अपने प्राण न्योछावर कर सकती हूँ, पर दूसरे के नहीं, और न उस वचन को तोड़ ही सकती हूँ, जो कि उसकी मरन-सेज पर मैं दे चुकी हूँ ।’

‘सहाना, आज इस जीवन के अन्त में तुम मुझसे क्या सुनना, क्या कहना चाहती हो ?’

‘कुछ भी नहीं ।’ उसने बाख़क की छाती से लगा लिया । जाते समय कहती गई—बच्चा भूखा है । इसे दूध पिजाकर फिर तुम्हारी बातें सुनूँगी ।’

माता-पुत्र स्तम्भित-से खड़े रह गये ।

(३)

‘सहाना, आज्ञामारी की चाभी देना, काशज्ञ निकालना है ।’ मन्दिर के द्वार पर केशव ने पुकारा ।

कटोरे में चन्दन पोंछकर शीला लौटी । एक दूसरे की ओर देखने लगे । उन दृष्टियों में प्रश्न था—तुम कौन हो, कहाँ से आये ?

उस दिन से सहाना का मन्दिर में जाना तथा रसोई आदि में जाना—नर्मदा देवी ने बन्द कर दिया था । ये बातें केशव जानता नहीं था, ऐसा नहीं । कदाचित् अभ्यास-वश फिर भी वह उस दिन मन्दिर-द्वार पर खड़ा हो गया । उसे स्मरण हो आया कि रात में इसी शीला की बात सहाना कह रही थी । वह नर्मदा की अनाथ ज्ञाती कन्या थी, अविवाहिता थी । नर्मदा ने उसे बुला लिया था ।

‘चाभी तो मेरे पास नहीं है । मैं शीला हूँ । कल यहाँ आई हूँ ।’

इस तरुणी की संकोचहीन बातों से केशव कम विस्मित न हुआ । वह उन आयत नयनों के सामने संकुचित हो रहा था । बोला—‘अच्छा तो मैं जाता हूँ ।’ किसी तरह इतना कहकर वह भागा ।

भोजन के आसन पर बैठकर केशव विरक्ति से यहाँ-वहाँ निहारने लगा । शीला थाली और कटोरों को रखकर पंखे से मझ्झी भगाने लगी । रसोई ब्राह्मण बनाता था । किन्तु भोजन के समय सहाना सामने बैठती थी, दो-चार तरकारियाँ भी पति के लिए अपने हाथ से बनाया करती थी । परन्तु हलकू के आने के बाद से गृहिणी उसे दूर रखकर स्वयं उन कामों को कर लिया करती थी और आज उन्हीं ने शीला को अपना स्थान सौंप दिया था ।

‘केशव, करेखे कैसे बने हैं ?’ माता सामने आकर खड़ी हो गई ।

‘अच्छे ।’

‘शीला ने बनाये हैं । बड़ी काम की लड़की है और वैसी ही

नम्र-शान्त भी है। मैं जिस काम को कह देती हूँ उसे जी खोजकर करती है। आलू के बरे भी उसने बनाये हैं, अच्छे बने हैं न ?'

‘हाँ।’

‘क्यों मूठ बोलते हैं ! आपने उन्हें छुआ तक नहीं।’—शीला हँस पड़ी।

अप्रस्तुत होने के साथ-ही-साथ शीला के सरल व्यवहार से केशव सन्तुष्ट भी हुआ।

‘शीला सच कह रही है भैया। तुमने तो आज कुछ नहीं खाया।’

‘खराब बना होगा।’

‘नहीं-नहीं’, सब चीजें अच्छी बनी हैं। भूख नहीं है।’

‘फिर भी आप मूठ कहते हैं। मैं कहती हूँ मौसी, भौजी को बुला लो अभी ये भरपेट भोजन कर लेंगे।’

इस तरुणी की मुँह पर सच कहने की शक्ति को देखकर केवश मन से उसकी प्रशंसा करने लगा।

‘ऐसा तो नहीं हो सकता, शीला कि मेरे जीते-जी घर में भंगी बसोरो का निवास हो जावे। बहू घर की लक्ष्मी कहलाती है, वही यदि अनाचार करने लगे, तो उस घर की भलाई कब तक हो सकती है। एक तो इस वंश का ही नाश होने बैठा है। एक बच्चा तक नहीं हुआ। वंश-रक्षा करना एक ज़रूरी बात है। किन्तु कोई सुनता ही नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने हाथों अपना सर पीट लूँ।’

एक अनजान के सामने इन बातों की अवतारणा से केशव चिढ़ रहा था, फिर भी उसने हँसकर कहा—‘तो अपना सर पीटकर ही देख लो।’

‘क्या दाँत निकालते हो भैया, मेरा तो जी जला जाता है। उसी की बात सब कुछ हो गई और मेरी बात को कोई पूछता तक नहीं।’

‘ऐसा तो नहीं है मा !’

‘फिर तू व्याह क्यों नहीं करता ?’

‘विवाहित हूँ ।’

‘इससे क्या हुआ । वंश-रक्षा के लिए लोग जाने कितने विवाह करते हैं । किन्तु इधर नो उसने सौगन्ध रख दी है ; मा की सौगन्ध को कौन मानता है ।’

‘उसने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा, यह विचार तुम्हारा गलत है । उनका मन छोटा नहीं है, मा । वे तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ कहती नहीं ।’

‘अरे, मैं सब कुछ जानती हूँ । आज वही तो तेरी सब कुछ है । एक दिन वह था, जब कि इस बुढ़िया के बिना तेरा दिन कटना मुश्किल था । तेरी आँखों के सामने वह तेरी ही मा का अपमान करे ! एक जैसवारे के लड़के को घर में रखे, दिन-भर गोद में लिये रहे और तू औरतों जैसा देखता रहे । भिक्कार है ऐसी ज़िन्दगी पर ।’

केशव आसन पर से उठ पड़ा ।

‘तुमने ऐसा क्यों कहा मौसी, उनने खाया तक नहीं ।’

‘क्या मैं चुपचाप यह सब सह लूँ ?’

‘किन्तु तुमने मेरे सामने क्यों कहा ? यही बात उन्हें बुरी लगी ।’

‘तुमसे सच कहती हूँ शीला, केशव ऐसा नहीं था, बहू ने उस पर जादू किया है ।’

इन बार शीला अपनी हँसी न रोक सकी । वह हँसते हँसते लोटने लगी ।

‘तू हँसती क्यों है ? इसमें हँसने की कौन-सी बात है ?’

‘तुम अन्धेर करती हो मौसी, भला जादू भी कोई चीज़ है ? फिर भौजी के लिए तो ऐसे विचार भी नहीं उठ सकते, उनकी बातचीत की रीति, उनकी शिक्षा ही निराळे ढंग की है, वे हजारों में एक स्त्री हैं ।’

‘तू भी ऐसा कहती है, शीला ! मैं तुझे अपना समझे हुए थी । मेरा भाग्य ही ऐसा है ।’

शीला नर्मदा के गले से खिपट गई—नाराज़ हो गई मौसी !

‘नहीं बेटा, मैं अपने भाग्य पर रोती हूँ !’

(४)

मल्लार रागिनी का अलाप लिये वर्षा तब पृथ्वी के सिरहाने उतर आई थी । घर-द्वार और तरु-पल्लवों में उसके पैरों की हरियाली की छाप पड़ने लग गई थी । उस हरियाली ने बूढ़े बट के नीरस हृदय तक को सजीवता के साथ-ही-साथ रसपूर्ण भी कर दिया था । वर्षा की उस अलसाई हुई सन्ध्या ने केशव के निद्रालु चित्त में नवीनता का मोहक मन्त्र फूँक दिया । वह धीरे धीरे सहाना के कमरे की ओर बढ़ा, बहुत दिनों के बाद द्वार की ओर पीठ किये वह आईने के सामने खड़ी बाज़ों को सँभार रही थी । बाज़ों के गुच्छे कमर पर लहरा रहे थे । साड़ी का आँचल ज़मीन पर लोट रहा था । उसके ओठों पर इल्की सी मुसकान थिरक रही थी—वही रूप यौवन की गर्वीली मुसकान ।

‘सहाना !’ उसके पाँठ पर हाथ रखकर प्यार से केशव ने पुकारा ।

‘आप ?’ चंचल हरिणी की तरह वह झौटकर खड़ी हो गई ।

‘तुम तो शीला हो ! सहाना—मेरी सहाना को तुम लोगों ने कहाँ भगा दिया ?’

‘मैंने !’ किन्तु दूसरे पल शीला सहमकर बोली—‘वे तो घर ही में हैं, नीचे कुछ कर रही हैं ।’

‘फिर तुम उसके कमरे में, उसी की तरह इस आईने के सामने क्यों खड़ी थी ?’

शीला के लिए यह अद्भुत प्रश्न तो था ही, और जो कुछ था, वह था अपमान और तिरस्कार । फिर भी उसकी शिक्षा ने उसे आपे से बाहर होने से रोका । कौन-सी भयानक स्थिति ने केशव जैसे

गम्भीर प्रकृतिक के मनुष्य को इस तरह विचलित कर दिया है ? — इस बात को सोचकर शांता सिहर उठी । वह हट गई ।

केशव पत्नी के सामने जाकर खड़ा हो गया—एक दीर्घ श्वास की तरह—कहाँ थीं तुम ?

सहाना जल्दी से हलकू के उन नन्हें, प्यारे हाथों को छोड़कर ज़रा हट आई । वह जानती थी कि उसी दुःखी, असहाय शिशु को लेकर उसकी गृहस्थी में कैसा तूफान उठा हुआ है ।

‘तुम मेरे साथ साथ रहा करो सहाना ।’

पति के उन व्याकुल बाँहों में अपने को सौंपकर वह उसका मुँह निहारने लगी । समुद्र सा अथाह विस्मय उसके सामने था । बच्चा रोने लगा । इतनी देर के बाद केशव की दृष्टि हलकू पर पड़ी—इसी के लिए आज तुम मुझे भूल रही हो ? मेरी यह दशा हो रही है ? सारे अनिष्ट की जड़ यही है । अच्छा ठहरो ! केशव ने बालक को उठा लिया । शायद उसे फेंकना चाहता हो ।

उन्मादिनी की भाँति सहाना ने बालक को छीन लिया । अपने छाती से उसे लगाकर वह हँफने लगी ।

‘उसे दे दो सहाना, वरना आज मुझे कठोर बर्ताव करना पड़ेगा ।’

‘नहीं नहीं’, मेरे बच्चे का खून मत करो । पहले मुझे मार डालो ।’ वह बच्चे को गोद में लेकर जमीन पर बैठ गई ।

केशव को ज़िद-सी हो गई—मैं उसे लेकर ही छोड़ूँगा । वह उसे छीनना चाहने लगा । सहसा उसकी आँखें सहाना की आँखों से मिल गई । सहाना की उस दृष्टि को वह सह न सका—यह कैसी रिक्त, सर्वशून्य दृष्टि है ! केशव सिहर उठा । उसके हाथ अपने-आप रुक गये । हृदय में प्रश्नों की ऋद्वी-सी लग गई—वह जो गतयौवना, रूपवती नारी मर्द के रूप की प्यास को बुझाने के लिए आज सब कुछ खो बैठी है, उसके जीवन के लम्बे अनमोल दिन क्या योंही दीर्घ श्वास की नाई

छोटे से पल में उड़ जावेंगे ? जिसके अणु-परमाणु माता होने के लिए सृजे गये थे ; उसे व्यर्थ करने का अधिकार क्या दुनिया में किसी को भी था ? शायद जीवन के आरम्भ में ही वह पावन दीप जलाये सन्तान की प्रतीक्षा में बैठी थी, उसकी उस प्रतीक्षा को निष्फल किसने किया ? पति के अभिमान से अन्धा बनकर उसके शुद्ध, सुन्दर मातृत्व को छीन लेनेवाला वह राक्षस कौन था ! कठोर तपस्या शेष कर जीवन की सन्ध्या बेला जो रमणी भिखारिन की तरह सन्तान की भीख माँग रही है, उसकी भिक्षा की माँखी आज वह किस चीज़ से भरेगा ?

माता की वह मरुभूमि की-सी तृष्णा को वह किस तरह तृप्त करेगा ? उसकी उस ज़रा-सी शान्ति, सन्तोष उस अभागे बच्चे को छीनकर क्या ? पति-पूजा का पुरस्कार क्या वह इसी तरह देगा ? केशव की चिन्ता में बाधा पड़ी। सहाना ने बच्चे को उसके पैर तले डाल दिया—जो, लेते जाओ, आज मैं इसे तुम्हीं को सौंपती हूँ। दोनों हाथों से सहाना ने अपना मुँह ढाँक लिया। केशव ने एक बार पत्नी की ओर और दूसरे बार बच्चे को देखा, फिर हलकू को धीरे से उठाकर सहाना की गोद में डाल दिया।

(६)

जिस दिन उस बालक का अन्त हो गया, उस दिन सहाना की आँखों में पानी का एक छोटा-सा बूँद तक नहीं था। दिन एक सा बहने लगा, सहाना के अन्दर का परिवर्तन बाहरी जगत से छिपा ही रह गया, शायद जीवन भर के लिए। वह सब कामों में योग देती और पति से हँसकर बातें भी करती, केवल दिन में एक बार वह उस नन्हें बच्चे के चित्र को आँखों से जगा लेती।

जिस दिन उसकी वह चोरी पकड़ी गई, उस दिन केशव ने विरक्त होकर कहा—बुढ़ापे में क्या तुम पागल हो जाओगी ? धूमकेतु यदि मरा भी तो निशानी छोड़ गया !

‘छि: मरे हुए को ज़रा-सा सम्मान करना सीखो। उसकी भी आत्मा थी।’ सहाना के कंठ में तिरस्कार था।

‘ऐसा ! तो उस कमीने के लिए आँसू भी बहाना पड़ेगा !’

‘फिर इससे तुम छोटे न हो जाओगे।’

‘और कुत्तों, बिल्लों के लिए किस दिन आँसू बहाना होगा सो भी कह दो।’

सहाना ने उत्तर नहीं दिया। इन बातों का वह जवाब ही क्या देती ?

‘अब जवाब क्यों नहीं देती ?’

‘क्या इन बातों का उत्तर भी देना है ? और मुझी को ?’

उन शब्दों में कौन-सी सम्मोहनी भरी थी, सो तो केशव ही जाने, किन्तु इसके बाद मारे लज्जा के उसकी आँखें झुक गईं। पिछली बातों के स्मरण से शायद उसके मन में अनुताप की छाया-सो पड़ी, किंतु दूसरे क्षण वह बलात् ही अस्वीकार करने लगा—वह तो होनहार था।

झूठ से समझौता करते-करते लोग अपने जीवन की न-जाने कितनी अनमोल वस्तुओं को खो बैठते हैं, और शायद इसी से केशव फिर मिथ्या से समझौता करने लग गया।

‘तुम बैठी फोटो देखती रहो। और मैं भूखा-प्यासा बैठा तुम्हारा मुँह निहारता रहूँ। यही कहना चाहती हो न !’

‘मैं तुमसे कुछ भी कहना नहीं चाहती। भोजन कर लो।’

‘अन्यथा ! इतनी देर के बाद याद भी तो आया।’

वह कह सकती थी कि आजकल भोजन छूने का अधिकार उसे नहीं है। कह सकती थी, अब उसके बदले शीखा उन कामों को किया करती है; परन्तु नहीं उसने कहा कुछ नहीं। चुपके-से बाहर निकल गई।

‘आइये।’—शीखा ने पुकार।

केशव के कानों में अमृत वर्षा हो गई, कैसी दर्द-भरी पुकार है, मन में कहा केशव ने।

आसन के आगे मिठाई की रकाबी रखे बैठी थी शीला—उसी की प्रतीक्षा में। केशव का अन्तर बाहर आनन्द, सन्तोष से भर उठा। सारे दिन परिश्रम के बाद घर में भी शान्ति नहीं मिलती थी। उस तरुणी की सेवा, सहानुभूति से केशव बिछुड़े हुए दिनों की उसी एक खुशी के समुन्दर में लहराने लगता था, थोड़ी देर के लिए।

गरम-गरम कचौड़ी रकाबी में डालकर शीला ने कहा—इनमें से एक भी न बचे, वरना दण्ड मुगतना पड़ेगा।

केशव ने शीला की ओर देखा, उस तरुणी के सारे अंगों से खुशी का झरना-सा झरता पाया।

‘कोन-सी सज़ा मिलेगी शीला !’ कौतुक से केशव ने पूछा।

‘फिर इतनी ही कचौड़ियाँ और भी खानी पड़ेंगी।’

‘यदि न खा सकूँ ?’

‘तो इसी तरह रात-भर बैठे रहना पड़ेगा।’

‘तुम मेरे सामने रहोगी न शीला ?’

‘जाइये !’ ये मीठे शब्द बहुत ही मीठे ढंग से कहे गये।

केशव चौंक पड़ा और उसके बाद वह एकदम उठकर भागा—चोरों की तरह।

आकुल विस्मय से शीला उस निहारती ही रह गई।

सहाना ने धीरे से पति के सर पर हाथ फेरा, पूछा—इस समय तुम सोये क्यों, जी खराब तो नहीं है ?’

‘सहाना, तुम्हीं मेरी सहधर्मिणी हो और तुम ही रहोगी।’ दोनों हाथों से सहाना का हाथ पकड़कर वह बार-बार कहने लगा।

सहाना धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

‘क्या वे पुराने दिन नहीं ज़ौट सकते, सहाना !’

सहाना का हृदय व्यथा से विकल हो पड़ा।

‘कहो सहाना, जवाब दो।’

‘तुम्हारे दर्द को मैं और भी बढ़ाना नहीं चाहती ।’

‘समझा नहीं’—केशव ने कहा ।

‘तुम जरा चुपचाप सो जाओ, जी ठीक हो जायगा ।’

‘नहीं, नहीं, मुझे कहने दो, सहाना—सहाना—।’

‘मैं जानती हूँ ।’

‘तुम ! तुम—जानती हो क्या जानती हो ?’ विराट् विस्मय से केशव की आँखें विस्फारित हो रही थीं ।

‘सब बातों को । किन्तु तुम्हारे मुँह से सुनना नहीं चाहती ।’ वह हँसी ।

केशव का सिर अपने-आप झुक गया ।

‘कब से जानती हो ?—देर के बाद केशव ने पूछा ।

‘बहुत दिनों से ।’

‘तुमने मुझे सावधान क्यों न किया ? मुझे अपनी बातों में खोच क्यों न लिया ?’

‘जबरन भी ? किन्तु नहीं ; मैं ऐसा नहीं कर सकती थी । वैसी भीख की झोली से मैं घृणा करती हूँ—आन्तरिक घृणा । प्रेम-प्यार आदर की वस्तु झरूर है, परन्तु माँगने की नहीं । उसके लिए दूसरे से झगड़ा, छिः ! छिः !’

सहाना घृणा से सिहर उठी ।

‘तुम पत्थर की बनी हो, सहाना ।’

‘होगा भी ।’—उदास स्वर से उसने कहा ।

‘अपना अधिकार मैं इस अवहेलना से नहीं छोड़ सकता था ।’

‘अवहेलना ? नहीं, घृणा कह सकते हो । मैं कहती थी, ये सब बातें तभी उठ सकती हैं, जब कि अधिकार को कोई छोड़ देता !’

‘फिर यह क्या है ?’

‘जो प्रेम एक बार किसी के द्वार पर लुट चुका था, वही प्रेम यदि

आज प्रतारक की तरह दूसरे के द्वार पर भौंकने लगे, तो उसके लिए सर पीटने की जरूरत नहीं है। अधिकार मन की चीज़ है। प्रेम के उस अधिकार को छीन लेने की शक्ति विधाता को भी नहीं है, फिर हम तो आदमी ही ठहरे।' सहाना उठी—अब मैं जाती हूँ, काम पड़ा है।

(६)

काम करते-करते शिशु-कंठ के मीठे गीत से अनमनी-सी सहाना द्वार पर आकर खड़ी हो गई।

गीत गा-गाकर नन्हें-नन्हें बच्चे देश के लिए भीख माँग रहे थे। सहाना पलकहीन नेत्रों से उन्हें देखने लगी।

‘माताजी !’ एक ने पुकारा।

‘इन भोलियों में कुछ डाल दो माताजी !’ दूसरा बोला।

सहाना ने एक सुन्दर शिशु को गले से जगा लिया, बोली—क्या कहा भैया, फिर कहना।

‘इन भोलियों में कुछ डाल दीजिये।’

‘नहीं नहीं, उसी तरह फिर पुकारो।’

‘माताजी !’

‘और छोटे शब्दों में।’

‘मा !’

‘फिर पुकारो !’

‘मा—मा !’

वह कान लगाकर सुनने लगी—मा—मा ! एक स्वप्न-सा आँखों में छा गया—जैसे कि उसने अपने हृदय के खून—उस प्यारे बच्चे को देश के काम में सौंप दिया हो। सहाना देखने लगी—उसके उस देश-सेवा के श्रेष्ठ दान से, उस दृष्टान्त से प्रत्येक माता ने अपनी गोदी खाकी कर दी। वह विस्मय के साथ देखने लगी—जल, वायु, आकाश शिशुओं से छा रहा है, तिल बराबर भी कहीं स्थान नहीं है। ‘यह कैसा

विराट रूप है !' वह कह उठी ।

‘सहाना !’—पति की पुकार से वह स्वप्न-लोक से जाँटी ।

उसने उत्तर दिया—हाँ ।

उस दृष्टि को केशव सह न सका । वह किस उद्देश्य से किसके पास आया है ?—उसकी चिन्ता विकल हो पड़ी—मा से आज वह प्रेयसी को माँग रहा है ! गृहिणी के नयनों में वह तरुणी की प्यास को देखना चाहता है ! सेविका से वह सोहाग माँगता है । हाँ—इतने दिनों के बाद । केशव समझ ही न सका कि उसी के अनादर, अवहेलना से उसकी प्रेयसी मर चुकी थी—बहुत दिन पहले । और उसी नारी के भीतर अब जो कुछ था—वह था केवल मा का गम्भीर स्नेह, और समुन्दर-सा प्यार ।

कुछ विचारता हुआ केशव शीखा के निकट आकर खड़ा हो गया ।

‘आइये । भूल लगी है क्या ?’—नदी की-सी तरल स्वर से उसने पूछा ।

केशव मुग्ध विस्मय से उसे निहारने लगा । और दृष्टि के आगे शीखा खिलखिला पड़ी ।

‘मैं तुम्हीं को ढूँढ़ रहा था शीखा ।’ केशव का स्वर मृदु था ।

नर्मदा ने पुकारा—भैया, जरा सुन जाना ।

रात में सहाना ने केशव के कागज़ों को हटाकर किसी प्रकार की भूमिका के बिना ही कहा—शादी के लिए और तैयारियाँ तो मैंने कर ली हैं, केवल गहने तुम बनवा देना ।

‘किसकी शादी ?’

‘शीखा की ।’

‘वर कहाँ मिले ?’ उसका कण्ठ काँप रहा था ।

कुछ देर तक पति के मुँह की ओर देखकर सहाना ने उत्तर दिया—वह घर ही में है ।

‘और मैंने उसे नहीं देखा ?’

‘मैंने जब देखा है, तब तुम भी देख चुके हो !’

‘याने ?’

‘तुम हो !’

‘मैं, मैं !’ वह पीछे हटा ।

‘हाँ, तुम !’

‘यह दिख्खगी अच्छी नहीं लगती, सडाना ।’

‘दिख्खगी नहीं सच ही कहती हूँ, इसी पन्द्रह तारीख को शादी होगी ।’

‘असम्भव है ।’

‘ऐसा मत कहो—सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं ।’

‘ऐसा तुमने क्यों किया सडाना ?’

‘क्योंकि इसकी ज़रूरत थी ।’

‘फिर भी वह नहीं हो सकता है, इससे न तो मेरी ही भलाई है और न तुम्हारी, किसी के लिए कभी भी मैं तुम्हें दुःख नहीं दे सकता ।’

‘तुम भूल रहे हो, तुम्हारे सुख के लिए मैं सब कुछ सह सकती हूँ, विशेषतः मेरे उस गत आनन्द की स्मृति की दुःख की शिखा जला नहीं सकती है, तुम विश्वास रखो ।’

‘किन्तु मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि तुम जैसी स्त्री रहते हुए भी मैं कर्क ही क्यों ?’

‘अपने मन से पूछो ।’ वह हँसती थी ।

‘मैं न तो कुछ सुनना चाहता हूँ और न कुछ पूछना, किन्तु यह विवाह हो नहीं सकता । सच कह रहा हूँ । वर के लिए सोचने की आवश्यकता नहीं है, उसी दिन वर तुम्हें मिल जावेगा ।

शिक्षा ने पुकारा—भौजी, चाय तैयार है । केशव ने सर नीचा कर लिया, आज वह उस ओर देख तक नहीं सकता था ।

(७)

उस धनी परिवार के नौकरों से लेकर मालिक तक उस दिन व्यस्त थे । बाहर से शहनाई मधुर स्वर से मिलात गीत अलाप रही थी । गलियों में चादर बिछ रही थी । पानी के मटकों में गुलाब जल मिलाया जा रहा था । बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में शाक-भाँजी बन रही थी । हलवाई मिठाई बना-बनाकर बूढ़े-पुरानों को चखा रहे थे । सहाना और केशव घूम घूमकर सब व्यवस्था कर रहे थे । शीला की शादी थी, एक धनी वर के साथ । बच्चे आँगन में धूम मचा रहे थे ।

चहुँओर के उस आनन्द के भीतर लहराती हुई नदी की भाँति शीला हँस-हँस अपनी मस्ती-सहेलियों से मिला रही थी—छियों के बीच में उसकी समालोचना हो रही थी । 'कैसी बेहया है ! बहन, आजकल की लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं । बूढ़ी हो जाती हैं तब कहीं दुल्हा मिलता है, इसलिए वे अपने आनन्द को छिपा नहीं सकतीं ।'

शीला ने एक स्त्री को चिहुँकी ले ली ।

'दुल्हा को चिहुँकी ले जाकर, मुझे नहीं ।' स्त्री ने कहा ।

'उन्हें तो रात में लूँगी !'

'कैसी बेहया है तू शीला ! तुझे लज्जा, हया कुछ भी नहीं ।'

स्त्री को भौंहे चढ़ गई, जिसे देखकर शीला खिल-खिलाकर हँसने लगी । चलते-चलते केशव लौटा । पल-भर के लिए उस खुशी की दिवाली की ओर उसने देखा, फिर काम में डूब-सा गया । केवल सहाना उस हँसी को सुनकर सिहर उठी ।

सन्ध्या समय बनाव-शृङ्गार शेष कर शीला दबे पाँवों उस द्वार के बाहर जाकर खड़ी हो गई, जहाँ कि केशव द्वार की ओर पीठ किये चुपचाप खड़ा कुछ विचार रहा था । वह कुछ देर तक खड़ी उसे देखती रही, इसके बाद उसने वहीं से केशव को प्रणाम किया । केशव लौटा, उसने देखा एक छाया सामने से हट रही है ।

व्यथा के साथ केशव ने पुकारा—शीला ! परन्तु उत्तर न मिला ।

‘अम था !’—दीर्घ श्वास के साथ ये शब्द उसके कंठ से निकले ।

बड़ी धूम से बरात आई । कन्यादान के समय शीला को लोग ढूँढ़ने लगे । किन्तु उसका पता कहीं भी न था । घर, द्वार, हरएक सन्दूक देखी गई, शीला न मिली ।

दो बूँद आँसू पोछकर सहाना ने अफ़स़ाना में विज्ञापन दिया—
शीला, तुम लौट आओ, इस घर में तुम्हारा निरादर न होगा ।

पगडगडी

तब मैं ऐसी नहीं थी । जोग समझते हैं, मैं सदा की ऐसी ही हूँ-
मोटी, चौड़ी, भारी-भरकम ; क्षितिज की परिधि को चीरकर, अनन्त को
सान्त बनाती, संसार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लेटी हुई ।
वह पुराना इतिहास है । कोई क्या जाने !

तब मैं न तो इतनी लंबी थी, न इतनी चौड़ी । न चेहरे पर हँसों की
की सुखों की लज्जाई थी, न शरीर पर कंकड़ों के गहने । मेरे दायें-बायें
वृक्षों की जो ये कतारें देख रहे हो, वे भी नहीं थीं, न फुट-पाथ था, न

बिजली के खम्भे ; अप्सराओं की-सी सजी न ये दूकानें थीं, न अँगूठी के नगिने की तरह ये पार्क । तब मैं एक छोटी-सी पगडंडी थी—दुबली, पतली, सुकुमार, नटखट !

कब से मैं हूँ, इसकी तो याद नहीं आती ; किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अमराई के इस पार की कोई तरुणी नदी से जल लाने के लिए उस पार गई होगी ; जैसे किसी छोटी-सी नगण्य घटना के बाद किसी प्रथा का जन्म हो जाता है, और उसके बाद फिर एक धर्म भी निकल पड़ता है ; उसी तरह एक तरुणी के जल भर लाने के बाद गाँव की सारी तरुणियाँ घड़े में जल लेकर अटकती, इठलाती एक ही पथ से आती रही होंगी और फिर वहीं से मेरे जीवन की कहानी बह निकली ।

मेरे अतीत के आकाश के दो तारे अब भी मेरे जीवन के सूनूपन की आँखियारी में झलमला रहे हैं । यों तो सारी अमराई, सारा गाँव मेरे परिचितों से भरा था, किन्तु मेरी घनिष्टता थी केवल दो जनों से, एक थे बटदादा और दूसरा था रामी का कुआँ ।

बटदादा अमराई के सभी वृक्षों में बूढ़े थे और सभी उन्हें श्रद्धा और आदर से बटदादा कहा करते थे । थे तो वे वृद्ध, किन्तु उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवकों से भी सरस था । वे अमराई के कुलपति थे । उनमें तपस्वियों का तेज भी था और गृहस्थों की कोमलता भी । उनकी सघन छाया के नीचे लेटकर बीते हुए युगों की वेदना और आह्लाद से भरी कहानियाँ सुनना, रिमरिम रिमरिम वर्षा में उनकी टहनियों में लुककर बैठे हुए पक्षियों की सरस बरसाती का मज़ा लूटना, आज भी याद करके मैं विह्वल हो उठती हूँ ।

ठीक इन्हीं से सटा हुआ रामी का कुआँ था—पक्का, ठोस, सजल, स्वच्छ, गम्भीर, उदार । साँझ-सवेरे गाँव की स्त्रियाँ झन्-झन् करती आतीं और अमराई को अपने कल कंठ से मुखरित करके कुएँ से पानी भरकर मुझे भिगौती हुई, रौंदती हुई, चली जातीं ।

मेरी चढ़ती हुई जवानी का आदि भी इन्हीं से होता है, मध्य भी इन्हीं से और अन्त भी इन्हीं से । भूलने की चेष्टा करने पर भी क्या कभी मैं इन्हें भूल सकती हूँ ?

मनुष्य के जीवन का इतिहास प्रायः अपने सगों से नहीं, परायों से बनता है । ऐसा क्यों होता है, समझ में नहीं आता ; किन्तु देखा जाता है कि अकरमात् कभी की सुनी हुई बोली, किञ्चित्मात्र देखा हुआ स्वरूप, घड़ी-दो-घड़ी का परिचय, जीवन के इतिहास की अमर घटना, स्मृति की अमूल्य निधि बनकर रह जाते हैं और अपने सगों का समस्त समाज, अपने जीवन का सारा वातावरण कमल के पत्ते के चारों ओर के पानी की तरह छल-छल करते रह जाते हैं ; उछल-उछलकर आते हैं, बह जाते हैं, टिक नहीं पाते । मैं सोचती हूँ, ऐसा क्यों होता है, समझ नहीं पाती ।

जेठ के दिन थे । अलस दुपहरी । गरम हवा अमराई के वृक्षों में लुढ़कती फिरती थी । बटवादा ऊँच रहे थे । एक वृक्ष में लिपटी हुई दो लताओं में झगड़ा हो रहा था । मैं तन्मय हो उनका झगड़ा सुन रही थी, इतने में ही कुँ ने पूछा—पगडंडी, सो गई क्या ?

‘नहीं तो’ मैंने कहा—इन लताओं का झगड़ा करना सुन रही हूँ ।

कुँ ने हँसकर पूछा—बात क्या है ?

मैंने कहा—कुछ नहीं, नाहक का झगड़ा है, दोनों मूर्ख हैं ।

कुँ ने हँसकर कहा—संसार में मूर्ख कोई नहीं होता, परिस्थिति सबको मूर्ख बनाती है । इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक और पगडण्डी बन जाय तो क्या यह सम्भव नहीं कि फिर तुम दोनों झगड़ने लग जाओ ?

मैं तनिक गई । बोली—साधारण बात में भी मेरा जिक्र खींच लाने का तुम्हें क्या अधिकार है ?

कुँ ने पूछा—उन्हें मूर्ख कहने का तुम्हें क्या अधिकार है ?

मैंने कहा—मैं सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी, वे दोनों मूर्ख हैं, तुम भी मूर्ख हो, सब मूर्ख हैं ।

इतने में ही बटदादा भी जग पड़े, बोले—किसको मूर्ख बना रही है ?

बात रुक गई, कुआँ चुप हो गया । दो दिन तक बोल-चाह बन्द रही ।

मैंने जान-बूझकर उससे झगड़ा क्यों किया, इसे वह समझ नहीं पाया ; इसलिए मुझे सन्ताप भी हुआ और ग्लानि भी । स्त्री प्रेम से विह्वल हो जाती है और अपने उच्छ्वसित हृदय के उद्गारों को जब निरुद्ध नहीं कर पाती तब वह झगड़ा करती है । स्त्री-का सबसे बड़ा बल है रोना ; उसकी सबसे बड़ी कला है झगड़ा करना । झगड़ा करके तिनकना, रूठकर रोना, फिर दूसरे को रूलाकर मान जाना, नारी-हृदय का प्रियतम विषय है । पुरुष, चाहे कितना भी पढ़ा-लिखा हो, साहित्यिक हो, दार्शनिक हो, तत्त्वज्ञानी हो, यदि वह इतनी सीधा-साधी बात नहीं समझ पाता तो सचमुच मूर्ख है ।

यह घटना कुछ नई नहीं थी, नित्य की थी । कोई छोटी सी बात लेकर हम झगड़ पड़ते, आपस में कुछ कह-सुन देते, फिर हफ्तों एक दूसरे से नहीं बोलते । किन्तु वह बात जिसके लिए मैं सब कुछ करती, सारा झगड़ा खड़ा करती, कभी नहीं होती । कुआँ मुझे कभी नहीं मनाता था । अन्त में हारकर मुझे ही बोलना पड़ता, तब वह बोलने लगता, मानो कुछ हुआ नहीं । मैं मन-ही-मन सोचती, यह कैसा विचित्र जीव है कि न तो इसे रूठने से कोई वेदना होती है, और न मनाने से कोई आह्लाद । स्वयं भी नहीं रूठता, केवल चुप हो रहता है; बोलती हूँ तो फिर बोलने लगता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं । हे ईश्वर ! अपनी रचना की हृदयहीनता की सारी थैली क्या मेरे ही लिए खोज रखी है !

इस घटना पर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु वह बात रह-रहकर मेरे कानों में गूँज उठती—‘इस अमराई में तुम अकेली हो, कल एक पगडण्डी बन जाय तो क्या यह सम्भव नहीं कि फिर तुम दोनो भी भगड़ने लग जाओ ?’ इसका प्रतिवाद मैंने कैसे किया ? उसमे भगड़ा किया, इसे मूर्ख बनाया । कुआँ समझता है कि मैं स्त्री हूँ और स्त्री-जाति की कमज़ोरी मेरी भी कमज़ोरी है । और इसका प्रतिवाद करने के बदले मैं स्वयं उसके तर्क का प्रतिपादन कर देती हूँ, फिर मूर्ख मैं हुई या वह ?

मुझे रह-रहकर अपनी निर्बलता पर क्रोध आ जाता । यदि उसे मेरे लिए कोई सहानुभूति नहीं, मेरे रुठने की कोई चिन्ता नहीं, मुझे मनाने का आग्रह नहीं, तो फिर मैं क्यों उसके लिए मरने लगी । यदि वह हृदयहीन है, तो मैं भी हृदयहीन बन सकती हूँ । यदि वह आराम-निग्रह कर सकता है, तो मैं भी अपने-आप पर संयम रखना सीख सकती हूँ । मैंने कसम खाई कि फिर उससे रुठूँगी ही नहीं, और यदि रुठूँगी तो फिर बोलूँगी नहीं, चाहे जो भी हो, प्रेम के लिए स्त्रीत्व को कलङ्कित नहीं करूँगी ।

एक दिन की बात है । आश्विन का महीना था । बरसात अभी-अभी बीती थी । न कीचड़ थी, न धूल । छोटी हरी घासों और जंगली फूलों के बीच से होकर मैं अमराई के इस पार से उस पार तक लेटी थी । इस सघन हरियाली के बीच मैं मुझे देखकर जान पड़ता मानो किसी कुमारी कन्या का सीमन्त हो । शायद मेरे अङ्ग-अङ्ग में प्रतिबिम्बित हो रहा था । मैं कुछ सोच रही थी, सहसा कुएँ ने कहा—पगडण्डी सुनती हो ?

मैंने अन्यमनस्क-सी होकर कहा—कहो ।

उसने कहा—तुम दिनों-दिन मोटी होती जा रही हो ।

मैं कुछ नहीं बोली ।

कुछ ठहरकर वह फिर बोला—तुम पहले जब दुबली थीं, अच्छी लगती थीं ।

मैंने कहा—अगर मैं मोटी हो गई हूँ, तो केवल तुम्हें अच्छी लगने के लिए तो मैं दुबली होने की नहीं !

कुएँ ने कहा--यह तो मैंने कहा नहीं कि दुबली होकर तुम मुझे अच्छी लगोगी ।

मैंने पूछा—तब तुमने कहा क्या ?

उसने कहा—कवियों का कहना है कि दुबलापन स्त्रियों के सौन्दर्य को बढ़ा देता है । मोटी होने से तुम कवियों की सौन्दर्य की परिभाषा से दूर हट जाओगी ।

मैंने स्त्रीभ्रूण पूछा—तुम तो अपने को कवि नहीं समझते न !

उसने कहा—बिलकुल नहीं ।

मैंने पूछा—फिर मोटी हो जाने पर मैं कवियों को अच्छी लगूँगी या बुरी, इससे तुम्हें मतलब !

उसने शान्त भाव से कहा—कुछ भी नहीं, केवल यही कि मैं उस परिभाषा को जानता हूँ और उसे तुम्हें भी बतला देना अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

मैंने गम्भीर होकर कहा—धन्यवाद !

स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, तो सब कुछ सह सकती है, पर अपने रूप का तिरस्कार नहीं सह सकती । स्त्री चाहे घोर कुरूप हो फिर भी पुरुष को उसे कुरूपा कहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं । स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सब से महान् सौन्दर्य है और उसके प्रति असुन्दरता का संकेत करना भी उसके स्त्रीत्व को अपमानित करना है । स्त्री के स्वरूप का उपहास करना वैसा ही है जैसा पुरुष को कायर कहना । मैं समझ गई कि कुर्छा मुझ पर भार्मिक आघात कर रहा है, परिहास नहीं, उपहास करना चाहता है । मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि चाहे

अन्त जो भी हो, मैं भी आज से युद्ध प्रारम्भ करूँगी ।

उसी दिन रात को चौदनी खिन्नी थी । रजनीगंधा के सौरभ से अमराई मस्त होकर झूम रही थी । बटदादा पक्षियों को बुलाकर अपने भी सोने का उपक्रम कर रहे थे । बोले—सो गई बेटी ?

मैंने कहा—नहीं दादा, ऐसी चौदनी क्या सदा रहती है ? मेरे तो जी में आता है कि जीवन-भर ऐसे ही लेटे-लेटे चाँद को देखती रहूँ ।

इतने ही में कुआँ बोला—दादा, अमराई में ब्याह के गीत अभी से गाने शुरू करवा दो ।

दादा ने पूछा—कैसा ब्याह ?

उसने कहा—देखते नहीं, प्रेम का पहला चरण प्रारम्भ हो गया है ; दूसरे चरण में कविताएँ बनेंगी, तीसरे चरण में पागलपन का अभिनय होगा, चौथे चरण में सगाई हो जायगी ।

मुझे मन-ही-मन गुदगुदी-सी जान पड़ने लगी । सोचा, आज इसे खिजाऊँगी । मैंने हँसकर कहा—दादा, देखो अपने-अपने भाग्य की बात है । ईश्वर ने तुम्हें इतना ऊँचा बनाया है । तुम अपनी असंख्य अंजुलियों से सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का अजस्र पान करते हो और किसी एकान्त स आती हुई वायु में अनन्त स्नान करके विस्तृताकाश में सर उठाकर प्रकृति की अनन्त विभूतियों का अनुशीलन करते हो । नक्षत्रों से भरी हुई रात में शत-शत पक्षियों को गोद में लिये हुए तुम चन्द्र-लोक की कहानी सुना करते हो, वषा और गोधूँल नित्य तुम्हें स्नेह से चूम लिया करते हैं, प्रकृति का अनन्त भण्डार तुम्हारे लिए उन्मुक्त है । मैं तुम्हारे जैसी ऊँची तो नहीं हूँ, फिर भी दूर तक फैली हूँ । वसु-न्धरा अपनी सुषमा मेरे सामने बिखेर देती है, आकाश सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का जाल मेरे ऊपर फैला देता है । बसन्त की मादकता, सावन की सजल हरियाली और शरद् की स्वच्छ सुषमा मेरे जीवन में स्फूर्ति प्रदान करती हैं । मैं केवल जीती ही नहीं, जीवन का उप-

भोग भी करती हूँ । किन्तु मुझे दुःख उन लोगों को देखकर होता है, जिन्हें न तो सूर्य का प्रकाश मिलता है, न चन्द्रमा की किरणें ; अन्धकार ही जिनके जीवन की भित्ति है और सूनापन ही जिनकी एक कहानी है । वे आकाश को उतना ही बड़ा समझते हैं, जितना उनके भीतर समाता है, वसुन्धरा को उतनी ही दूर तक समझते हैं, जितना वे देख सकते हैं । दादा ! उनका अस्तित्व कैसा दयनीय है, तुमने कभी सोचा है ?

दादा कुछ नहीं बोले, शायद सो गये थे । लेकिन कुआँ बोला—
सुन रहे हो, दादा ? पगडण्डी कितना सच कह रही है ! ऐसे लोगों से अधिक दयनीय जीवन किसका होगा ? कुछ दिन पहले मैं भी यही सोचा करता था, किन्तु मुझे जान पड़ा कि संसार में और भी अधिक दयनीय जीवन हो सकता है । ईश्वर ने जिसे सूर्य और चन्द्रमा के आलोक से वंचित रखा, आकाश का विस्तार और वसुन्धरा का वैभव जिसे देखने नहीं दिया, उस पर दया करके कम-से-कम उसे एक ऐसी चीज़ दे दी, जिससे वह संसार का उपकार कर सकता है, जिसे वह अपना कह सकता है, जिसके द्वारा संसार का किसी-न-किसी रूप में वह लक्ष्य बन सकता है । किन्तु उससे अधिक दयनीय तो वे हैं जिनके सामने सृष्टि का सारा वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं । रेखागणित की रेखा की तरह उनका अस्तित्व तो है, किन्तु उनकी मुटुई, लम्बाई, चौड़ाई सब कुछ कात्पनिक है । उनका अस्तित्व किसी दूसरे के अस्तित्व में अन्तर्निहित है ! वे सभी के साधन हैं, किन्तु लक्ष्य किसी के भी नहीं । ऐसे लोग भी दुनिया में हैं । दादा, क्या उन पर तुम्हें दया नहीं आती ?

दादा बिस्मकुल सो गये थे । मैंने तैश में आकर कहा—रामी के कुआँ, यदि तुम समझते हो कि तुम संसार के लक्ष्य हो और मैं केवल साधन-मात्र, तो यह तुम्हारी भूल है । संसार में जो कुछ है साधन ही

है, लक्ष्य कुछ भी नहीं। लक्ष्य शब्द मनुष्य की उलझी हुई करारना का फल है ! लक्ष्य एक भावना-मात्र है, स्थूल और प्रत्यक्ष रूप में जिस किसी का अस्तित्व है, वह साधन ही है, चाहे जिस रूप में हो।

कुएँ ने गंभीर स्वर में कहा—तुमने मेरा पुरा नाम लेकर पुकारा इसके लिए धन्यवाद। मैं उत्तर में केवल दो बातें कहूँगा। पहली तो यह कि हमारा और तुम्हारा कोई अपना भाड़ा नहीं है, मैं समझता हूँ, व्यक्तिगत रूप से न तुमने मुझे कुछ कहा है, न मैं तुम्हें कुछ कह रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि जैसा तुम कह रही हो, लक्ष्य और साधन में प्राकारिक अन्तर न होते हुए भी पारिमाणिक अन्तर है। संसार में लक्ष्य नाम की कोई चीज़ नहीं, ठीक है ; यहाँ जो कुछ है, किसी-न-किसी रूप में साधन ही है, यह भी ठीक है। फिर भी मानना पड़ेगा कि साधनों में कुछ साधन ऐसी अवस्था में हैं, जिन्हें साधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ कहा ही नहीं जा सकता, और कुछ साधन ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं, जिन्हें संसार अपनी सुविधा के लिए लक्ष्य ही कहना अधिक उपयुक्त समझता है। इसका प्रत्यक्ष स्थूल प्रमाण यह है कि कुछ लोगों के यहाँ संसार आता है, हाथ फैलाकर कुछ माँगता है और फिर चला जाता है, संसार की स्थूल व्यावहारिक भाषा में वे तो हुए लक्ष्य, और कुछ लोग हैं ऐसे जिनके यहाँ संसार आता है, किन्तु इस-लिए नहीं कि वह उनसे कुछ लेना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके द्वारा वह अपने लक्ष्य के पास पहुँच सकता है ; तुम्हारी सूक्ष्म दार्शनिक भाषा में ऐसे लोग हुए साधन। समझीं ?

मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने रोक दिया, कहा—देखो, तुम्हारी चोंदनी डूब गई, अब तो सो सकती हो या नहीं ?

कुछ दिन और बीते। मेरे प्रेम की आग पर आत्माभिमान की राख पड़ने लगी। कुआँ संसार का लक्ष्य है, मैं केवल एक साधन हूँ। फिर मेरा उसका प्रेम कैसे हो सकता है ! मैं कभी-कभी सोचती, प्रेम में

प्रतियोगिता कैसी ? मान लो, वह संसार में सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं, फिर भी क्या यह यथेष्ट कारण है कि यदि मैं उससे प्रेम करूँ तो वह उसका प्रतिदान न दे ? कुर्बान अपने सांसारिक महत्व के गर्व में चूर है। वह समझता है कि उसके सामने मैं इतनी तुच्छ हूँ कि मुझसे प्रेम करना तो दूर रहा, भर-मुँह बोलना भी पाप है। वह मुझसे घृणा करता है, मेरा उपहास करता है, बात-बात में मुझे नीचा दिखाना चाहता है। बर्बर पुरुष जाति !

मैं दिनोदिन उससे दूर हटने की चेष्टा करने लगी। उसके सामीप्य में मेरा दम घुटने लगा। वह महत्त्वशाली है, संसार उसके सामने भिखारी बनकर आता है और मैं ? मेरा तो कोई अस्तित्व ही नहीं, किसी लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन-मात्र हूँ। मेरी उसकी क्या तुलना।

साँझ-सवेरे गाँव की स्त्रियाँ आती और पानी भर ले जातीं। अलस दुपहरी में पथिक अमराई में विश्राम करने के लिए आते और कुएँ के पानी में सत्तू सांकर खाते, फिर थोड़ी देर वृक्षों के नीचे लेटकर अपनी राह चले जाते। गाँव के छोटे-छोटे लड़के अमराई में आकर फल तोड़ते, कुएँ से पानी खींचते और फिर फल खाकर मुँह-हाथ धोकर चले जाते। जहाँ देखो उसी की चर्चा, उसी की बात। मैं अपनी नगण्यता पर मन-ही-मन कुढ़कर जली-सी जाती। मुझे जान पड़ता, मानो संसार मेरा उपहास कर रहा है, आकाश मेरा तिरस्कार कर रहा है, पृथ्वी मेरी अवहेलना कर रही है। मेरा अस्तित्व रेखागणित की रेखाओं और बिन्दुओं का अस्तित्व है। मैं सबकी हूँ, पर मेरा कोई नहीं। मैं भी अपनी नहीं केवल संसार को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए साधन-सी बनकर जी रही हूँ। मुझे यहाँ से हटना ही पड़ेगा। चाहे जहाँ भी जाऊँ, जाऊँगी झरूर। हृदय की शान्ति की खोज में वन-वन भटकूँगी, वसुन्धरा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के

अनन्त विस्तार को छान डालूँगी, यदि कहीं शान्ति नहीं मिली तो किसी मरुभूमि की विशाल सैकत-राशि में जाकर विलीन हो जाऊँगी, या किसी विजन पर्वत-माला की झंघेरी गुफा में जाकर सो रहूँगी, फिर भी यहाँ न रहूँगी। वहाँ से मैं हटने का उपक्रम करने लगी।

आधी रात थी। चाँदनी और अन्धकार अमराई के वृक्षों के नीचे गाढ़ाजिंगन में बँधे सो रहे थे। मुझे उस रात की सारी बातें अब भी याद हैं, मानो अभी कल ही की हों। मैं अपने अतीत जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी स्मृतियाँ सहेज रही थी। इतने में कुएँ ने पुकारा—पगडण्डी !

निशान के सूनेपन में उसकी आवाज़ गूँज उठी ! मैं चौंक पड़ी। इतने दिनों के बाद आज कुआँ मुझे पुकार रहा है, मेरा कौतूहल उमड़ने लगा।

मैंने कहा—क्या है ?

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर पुकारा—पगडण्डी !

शायद उसने मेरा बोलना सुना ही नहीं। मुझे आश्चर्य होने लगा, क्या आज कोई अभिनय होगा ? मैंने संयत स्वर में कहा—क्या है ?

कुआँ बोला—पगडण्डी, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

मैंने कहा—पूछो।

वह बोला—शायद तुम यहाँ से कहीं जा रही हो ?

उस समय बिजली भी गिर पड़ती तो मुझे उतना आश्चर्य न होता। इसे कैसे मालूम हुआ ? यदि मान लूँ कि किसी तरह मालूम भी हो गया, तो फिर इसे क्या मतलब ? मैं क्षण-भर में ही न जाने क्या-क्या सोच गई, कितने ही भावों से मेरा हृदय उथल-पुथल हो उठा, किन्तु मैंने सारा आवेग रोककर उदासीन स्वर में कहा—हाँ !

कुआँ थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—तुम इस अमराई से जा रही हो, अच्छा है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

मैं कुछ उत्तर देने जा रही थी, तब तक उसने रोक दिया—ठहरो, मेरी बात सुन लो। जब तुम पहले-पहल यहाँ आई थी, तब जितना प्रसन्न मैं हुआ था, उतना और कोई नहीं। आज जब तुम यहाँ से जा रही हो, तब भी जितनी खुशी मुझे हो रही है, उतनी और किसी को नहीं। तुम इसका कारण जानती हो ?

मैं कुछ नहीं बोली।

वह कहने लगा—मैं तुम्हें किसी दिन कहनेवाला ही था। तुमने स्वयं जाने का निश्चय कर लिया। यह और भी अच्छा हुआ।

मैंने अन्यमनस्क-सी कहा—संसार में जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है।

कुर्छा बोला—पगडण्डी, तुम यहाँ से जा रही हो, सम्भावना यही है कि फिर तुम कभी लौटकर नहीं आओगी। तुम्हारे जाने के पहले मैं तुमसे अपने हृदय की एक बात, एक चिरसंचित बात कहूँगा, सुनोगी तो ?

मेरे हृदय में उस समय दो धाराएँ बह रही थीं ; एक संशय की, दूसरी विस्मय की। फिर भी इतना है कि संशय से अधिक मुझे विस्मय ही हुआ। मैंने सारा कौतूहल दबाकर कहा—कहते जाओ।

कुर्छा कहने लगा—मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। केवल दो बातें हैं। मैंने तुमसे कभी नहीं कहा था। इसका कारण यह है कि अब तक कहने का समय नहीं आया था। तुम अब जा रही हो, जान पड़ता है वह समय आ गया, इसलिए कह रहा हूँ।

थोड़ा रुककर, फिर अपने स्वाभाविक दार्शनिक ढङ्ग से उसने कहना शुरू किया—

पहली बात यह है कि तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी आज तक मैंने ज़ाहिर क्यों नहीं होने दिया ? मुझे याद है, जिस दिन आकाश के ज्योतिष्पथ की तरह तुम पहले-पहल इस अमराई में आकर

बिछ गई, उस दिन मैंने बटहावा से पूछा था—दादा यह कौन है ? दादा ने विनोद से कहा—तुम्हारी बहू ! मैं भँप गया । तब से लेकर आज तक एक युग बीत गया ! कितने बसन्त आये, कितनी बरसातें आईं, इस अमराई की सघन छाया में हम दोनों ने कितनी कहानियाँ सुनीं, कितने गीत सुनकर फिर भूल गये और कितनी बार हम आपस में लड़ें-झगड़ें हैं । इस अतीत जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी मेरे स्मृति-पट पर अमर रेखा बनकर खिंच गई है और उन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को जोड़कर जो अक्षर बनते हैं, उनका एकमात्र अर्थ यही निकलता है कि इस अमराई में छोटी, पतली-सी जो एक पगडण्डी है, उस पगडण्डी के सूने उपेक्षित जीवन का जो निष्कर्ष है वह किसी एक युग या एक देश का नहीं, विश्व-भर का अनन्तकाल के लिए आलोक-स्तम्भ बन सकता है । वह न रहे, किन्तु उसकी कथा युग-युग तक कल्पना-लोक के विस्तृताकाश में स्रोतव का आदर्श बन आकाश दीप-सी झिल-मिलती रहेगी ।

किन्तु इतना होते हुए भी आज तक मैंने तुम से कभी कुछ कहा क्यों नहीं ?

इतना ही नहीं, मैंने अब तक तुम्हारे प्रति केवल उदासीनता और कठोरता के भाव ही प्रदर्शित किये । नीरस उपेक्षा, आलोचनात्मक विनोद, इसके अतिरिक्त मुझे याद नहीं, मैं और भी तुम्हें कुछ दे सका हूँ या नहीं ! किन्तु क्यों ? केवल एक ही कारण था ।

पगडण्डी, मैं तुम्हें जानता था, तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह पहचानता था । मैं तुम्हारे जीवन का दार्शनिक अध्ययन कर रहा था । मैं जानता था, संसार के कल्याण के किस अभिप्राय को लेकर तुम्हारे जीवन का निर्माण हुआ है । मैं जानता था, किस लक्ष्य को लेकर विश्व की रचनात्मक शक्ति ने तुम्हें स्वर्ग से लाकर इस अमराई की घासों और पत्तों की सेज पर सुजा दिया है । मैं यह भी जानता था

कि तुम्हारे अवतरण का जो अन्तर्निहित अभिप्राय है, वह किस पथ पर चलकर तुम अधिक से अधिक प्राप्त कर सकती हो ।

जिस महान् उद्देश्य को लेकर तुम जन्मी हो, उसे मैं जानता हूँ, इच्छा रहते हुए भी मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता । किन्तु हाँ, एक बात कर सकता हूँ । गायक अपनी तान को आरोह-अवरोह के बीच में नचाता हुआ ले जाकर सम पर बिठा देता है । सुननेवाले उसे सहायता नहीं दे सकते, फिर भी अन्त में सम पर एक बार सर हिला देते हैं । तान लौटकर घर आ गई, सबका सर हिल गया । पगडंडी, अपने जीवन के उच्चादर्श को तुम्हें अकेले ही निभाना पड़ेगा, मैं केवल इतना ही कर सकूँगा कि जिस दिन तुम्हारे जीवन की तान लौटकर घर आ जायगी, उस दिन उस संगीत में अपने को बहाकर सर हिला दूँगा । तुम्हारे जीवन-संगीत के सम पर अपने को निछावर कर दूँगा, बस ।

प्रेम से स्वर्ग मिलता है, किन्तु उससे भी ऊँचा, उससे भी पवित्र एक स्थान है । उसका वही पथ है जिस पर तुम जा रही हो, सेवा । प्रेम सभी कर सकते हैं, किन्तु सेवा सभी नहीं कर सकते । प्रेम करना संसार का स्वभाव है, किन्तु सेवा एक साधना है । प्रेम हृदय की सारी कोमल भावनाओं का आकुञ्चन है, सेवा उनका प्रसार । प्रेम से स्वयं लक्ष्य बनकर अपना एक कोई लक्ष्य बनाना पड़ता है, सेवा में अपने को संसार का साधन बनाकर संसार को अपनी साधनाओं की तपोभूमि बना देना पड़ता है । प्रेम यज्ञ है और सेवा तपस्या । प्रेम से प्रेमिक मिलता है और सेवा से ईश्वर ।

जन्म से लेकर आज तक तुम सेवा के पथ पर ही रही हो और अब भी उत्तरोत्तर उसी पर आगे बढ़ती जा रही हो । तुम्हारे मार्ग में जो सबसे बड़ा विघ्न बनकर खड़ा हो सकता है वह है प्रेम । प्रेम मनुष्यत्व है और सेवा देवत्व । तुम्हारी आत्मा स्वर्गिक होते हुए भी

तुम्हारा शरीर भौतिक है। आत्मा और शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी है। वसंत जब अपना मधुकलश पृथ्वी पर उड़ेल देता है, वर्षा जब बन-बन में हरियाली बिखरा देती है, शरद के शुभ्राभ्र खंड जब आकाश में तैरने लगते हैं, तब आत्मा की साधनाओं में शरीर छोटे-छोटे सपने छीट देता है; सामवेद की मधुर गंभीर ध्वनि में मेघ-मल्लार की मस्तानी तानें भीन जाती हैं, सोमरस में कादंब की बूँदें चू पड़ती हैं, कैलाश में वसंत आ जाता है। यह बहुत पुरानी कथा है। युग-युगान्तर से यही होता आया है, और यही होता रहेगा। फिर भी सभी इसे भूल जाते हैं। आँखें भ्रम जाती हैं, तपस्या के शुभ्र प्रत्यूष में अनुराग की अरुण उषा छिटक पड़ती है, साधना का बर्फ गलने लगता है, लगन की आग मँझाने लगती है, हृदय की एकान्तता में किसी की छाया घुस पड़ती है, जागृति में अँगड़ाई भर जाती है, स्वप्नों में मादकता भीन जाती है, और...और जब आँखें खुलती हैं तब कहीं कुछ नहीं रहता। फिर से नई कहानी शुरू होती है—नई यात्रा होती है, नया प्रस्थान होता है। इसी तरह यह संसार चलता है।

आत्मा के ऊपर शरीर का सबसे बड़ा प्रभाव है संशय। जब संसार में सभी किसी-न-किसी से प्रेम करते हैं, सभी का कोई-न-कोई एक अपना है, जब किसी से प्रेम करना, किसी के प्रेम का पात्र बनना प्राणिमात्र का अधिकार है, तब फिर मैं—केवल मैं ही—क्यों इससे वञ्चित रहूँ ? यह जीव की अमर समस्या है, शाश्वत प्रश्न है।

किन्तु सत्य क्या है, लोग यह समझने की बहुत कम चेष्टा करते हैं। जिनके पैर हैं वे जमीन पर चलते हैं, किन्तु जिन्हें पङ्ख मित्र हैं यदि वे भी जमीन पर ही चले तो यह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग है। जिन्हें ईश्वर ने आकाश में उड़ने के लिए बनाया है, उनके लिए पृथ्वी पर चलना अपने महत्त्व की उपेक्षा करना है, अपने आपको भूलना है।

प्रेम करने की योग्यता सब में है ; किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी-किसी को ही मिलती है । सेवा करने की योग्यता रखना दण्ड नहीं, ईश्वर का आशीर्वाद है । जिसे ईश्वर ने संसार में अकेला बनाया है, धन-वैभव नहीं दिया है, सुख में प्रसन्न होनेवाला और दुःख में गले लगाकर रोनेवाला साथी नहीं दिया है, संसार के शब्दों में जिसे उसने दुखिया बनाया है, उसके जीवन में उसने एक महान अभिप्राय भर दिया है, शक्ति का एक अमर स्रोत, बेचैनी की तड़फड़ाती हुई आँधी, उसके अन्तर में सँजोकर रख दिया है । हो सकता है वह इसे न समझे शायद संसार भी इसे न समझे ; फिर भी वह नहीं है, ऐसी बात नहीं ; वह है, आवश्यकता है केवल उसे समझने की ।

पगडण्डी, तुम ईश्वर की उन्हीं रचनाओं में से एक हो । तुम्हारा निर्माण इसलिए नहीं हुआ है कि तुम एक की होकर रहो, एक के लिए जिओ और एक के लिए मरो । नहीं, तुम पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा उद्देश्य लेकर आई हो । जेठ की धधकती हुई लू में, भादों की अजस्र वर्षा में और शिशिर के तुषार-पात में इसी तरह खेटी रहकर तुम्हें असंख्य मनुष्यों को घर से बाहर और बाहर से घर पहुँचना पड़ेगा । सम्यता के विस्तार के लिए, जीवन के सौख्य के लिए, संसार के कल्याण के लिए तुम्हें बड़ा-से-बड़ा त्याग करना पड़ेगा । तुम्हारा कोई नहीं है, इसलिए कि सभी तुम्हारे हैं ; तुम किसी की नहीं हो, इसलिए कि तुम सभी की हो । तुम अपने जीवन का उपभोग नहीं करती हो, तुम विश्व की अक्षय विभूति हो ।

आज के पहले मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा था, कारण यह था—पगडण्डी, मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा करना, कि तुम्हारी आत्मा सोई हुई थी, केवल शरीर जगा था । तुम नहीं समझती थीं कि तुम कौन हो, किस लिए यहाँ आई हो, तुम संसार के पुराने पथ पर चलना चाहती थीं । आज, चाहे जिस कारण से हो, तुम्हें अपने वर्तमान

जीवन से असन्तोष हो गया है, तुम्हें अपने से घृणा हो आई है। आज तुम अनन्त में कूदने जा रही हो, संसार में कुछ करने जा रही हो, तुम्हारी आत्मा जग उठी है। इन बातों को कहने का मुझे आज ही अवसर मिला है।

पगडण्डी, तुम ऐसा न समझना कि मैं तुमसे स्नेह नहीं करता, उससे भी अधिक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। फिर भी अपने व्यक्तित्व को तुम्हारे पथ में खड़ा करके मैं तुम्हारी आत्मा की प्रगति को रोकना नहीं चाहता। मैं तुम्हारी चेतना में अपनी छाया डालकर उसे मलिन नहीं करना चाहता। तुम्हारी संगीत-लहरी में अपवादी स्वर बनकर उसे बेसुरा बनाना नहीं चाहता। मैं बड़े ठक्कास से तुम्हें यहाँ से बिदा करता हूँ। जाओ—संसार में जहाँ अधिक तुम्हारा उपयोग हो सके, वहाँ जाओ और अपने जीवन को सार्थक बनाओ—यही मेरी कामना है, यही मेरा सन्देश है, यही मेरा...क्षमा करना...आशीर्वाद है !

केवल एक बात और कहनी है। मेरी हृदयहीनता को भूल जाना—हो सके तो क्षमा कर देना। मेरे भी हृदय है, इसमें भी थोड़ा रस है, पर मैंने जान-बूझकर उसे सुखा दिया, उसे आँखों में नहीं आने दिया ओठों पर से पोंछ डाला। तुम्हारे कर्तव्य-पथ को मैं अपने आँसुओं से गीला नहीं बनाना चाहता—पगडण्डी, मेरी व्यथा समझने की कोशिश करना, यदि न समझ पाओ तो...तो फिर सब कुछ भूल जाना।

संसार तुम्हारी राह देख रहा है, अनन्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जाओ अपना कर्तव्य पालन करो। संसार तुम्हें कुचले तो तड़पना नहीं, भूल जाय तो लिसकना नहीं ! भूले हुए पथिकों को घर पहुँचा देना, जो घर छोड़कर विदेश जाना चाहते हों उनकी सहायता करना, जब तक जीना खुश रहना, कभी किसी के लिए रोना नहीं और—एक बात और—यदि तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम की भावना आ जाय तो कोशिश करके, अपने अस्तित्व का सारा बल लगाकर, उसे निकाल

डाकना । यदि न निकाल सको तो फिर वहाँ से कहीं दूर—बहुत दूर—चली जाना ।

पगडण्डी ! बिदा ! तुम अपने ज्योतिर्मय भविष्य में अपने पुँधले अतीत को डुबो देना । सब कुछ भूल जाना—बटदादा और रामी के कुआँ को भी भूल जाना । केवल यही याद रखना कि तुम कौन हो और तुम्हारा कर्तव्य क्या है—बस जाओ, बिदा !—ईश्वर तुम्हें बख दे ।

कुआँ चुप हो गया । आधी रात की स्वप्निल नीरवता में जान पड़ता था उसका स्वर अब भी गूँज रहा हो, शब्द अन्तरिक्ष में अब भी घुमड़ते फिरते हों । मैं कुछ बोल नहीं सकी, सोच भी नहीं सकी । तन्द्रा-सी छा गई, काठ-सा मार गया । उसके अन्तिम शब्द अर्धरात्रि के शून्य अन्धकार में बिजली के अक्षरों में मानो चारों ओर लिखे हुए से उग रहे थे,—बस जाओ, बिदा, ईश्वर तुम्हें बख दे !

ठीक-ठीक याद नहीं आता, कितने दिन हुए, फिर भी एक युग-सा बीत गया । मेरी आँखों के सामने वह स्वरूप आज भी रह-रहकर नाच उठता है, कानों में वे शब्द अब भी रह-रहकर गूँज उठते हैं ।

अब मैं राजधानी का राजमार्ग हूँ । दोनों ओर सहेलियों की तरह दो फुट-पाथ हैं, धूप और वर्षा से बचाने के लिए दोनों ओर वृक्षों की कतारें हैं, रोशनी के लिए बिजली के खम्भे हैं, और न जाने विभव-विज्ञास की कितनी चीजें हैं । निश्च मेरा शृङ्गार होता है, मेरी देख-रेख में हज़ारों रूपए खर्च किये जाते हैं, राज-महिषी की तरह मेरा सत्कार होता है, जहाँ तक दृष्टि जाती है—बस मैं ही मैं हूँ ।

उत्तरदायित्व भी कम नहीं है । मैं शहर की धमनी हूँ, इसका रक्त-प्रवाह मुझी से होकर चारों ओर दौड़ता है । मैं सभ्यता का स्तंभ हूँ, राज्य-सत्ता का प्राण हूँ । इतनी भीड़ रहती है कि सोचने की फुर्सत भी नहीं मिलती । जन-समुद्र की अनन्त लहरें मुझे कुचलती हुई एक

ओर से दूसरी ओर निकल जाती हैं, मैं डफ् तक नहीं करती। इतनी भीड़ में मुझे अपना कहनेवाला एक भी नहीं, एक क्षण के लिए भी मेरा होनेवाला कोई नहीं। मेरे जलते हुए निर्विश्राम जीवन पर सहानुभूति की दो बूँद छिड़क दे, ऐसा कोई नहीं। फिर भी मैं व्यथित नहीं होती; सुश रहने की कोशिश करती हूँ, वेदना के शोनों पर मुस्कराहट की राख बिखेरती रहती हूँ, ओठों में हृदय को छिपाये रखती हूँ। जहाँ तक होता है, उसने जो कुछ कहा था सब करती हूँ। केवल एक ही बात नहीं होती, उसे भूल नहीं पाती !

अमराई की छाया में घासों और पत्तों पर वह जीवन, पक्षियों के गाने, लताओं का झगड़ा, बटदादा की कहानियाँ, और... और क्या कहूँ ! कितनी बातें हैं जो भुलाई नहीं जा सकतीं ! मेरे जीवन-संगीत की तान लौटकर सम पर आती है, आकर फिर लौट जाती है, पर किसी का सर नहीं छिन्नता !

यह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने ! एक समय था जब मैं ऐसी नहीं थी !



प्रेमचंद-साहित्य

उपन्यास

सेवासदन	२॥)
प्रेमाश्रम	४)
वरदान	१)
प्रतिज्ञा	१॥)
रंगभूमि [दो भाग]	५)
रावन	३॥)
कर्मभूमि	३॥)
निर्मला	२॥)
गोदान	४)
कायाकल्प	१॥३)

नाटक

कर्बला	१॥)
संग्राम	१॥)
प्रेम की वेदी	॥)

अनुवाद

टालस्टाय की कहानियाँ	१)
सुखदास	॥=)
अहंकार	१)
न्याय	२)
हड़ताल	२)
चाँदी की डिबिया	१॥)

कहानियाँ

सप्तसरोज	॥)
प्रेमपचीसी	२॥)
प्रेमपूणिमा	२)
नवनिधि	॥)
प्रेमप्रसून	१=)
अग्निसमाधि	१)
प्रेमतीर्थ	१॥)
पाँचफूल	॥)
क्लफन	२)
समरयात्रा	१)
मानसरोवर [भाग १]	२॥)
” [” २]	२॥)
मानसरोवर [” ३]	२॥)
” [” ४]	२॥)

आजाद कथा [हास्य]	३)
सृष्टि का आरम्भ	॥)

बालोपयोगी

कुत्ते की कहानी	॥)
जंगल की कहानियाँ	॥=)
राम-चर्चा	२)

निबन्ध

कुछ विचार : भाग १	२)
-------------------	----

संकलन

गल्प-समुच्चय	२॥)
गल्प-रत्न	१)

जीवनी

महात्मा शेखसादी	॥)
दुर्गादास	॥)
कलम-तलवार और त्याग	१)